श्रीकृष्ण-सन्देश

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ, मथुरा

ग्वालियरकी राजमाता श्रीमती विजयाराजे सिंधिया श्रीकृष्ण-जन्मस्थानमें

राजमाता गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तमजी महाराजके साथ
मन्दिरमें दर्शन कर रही हैं।
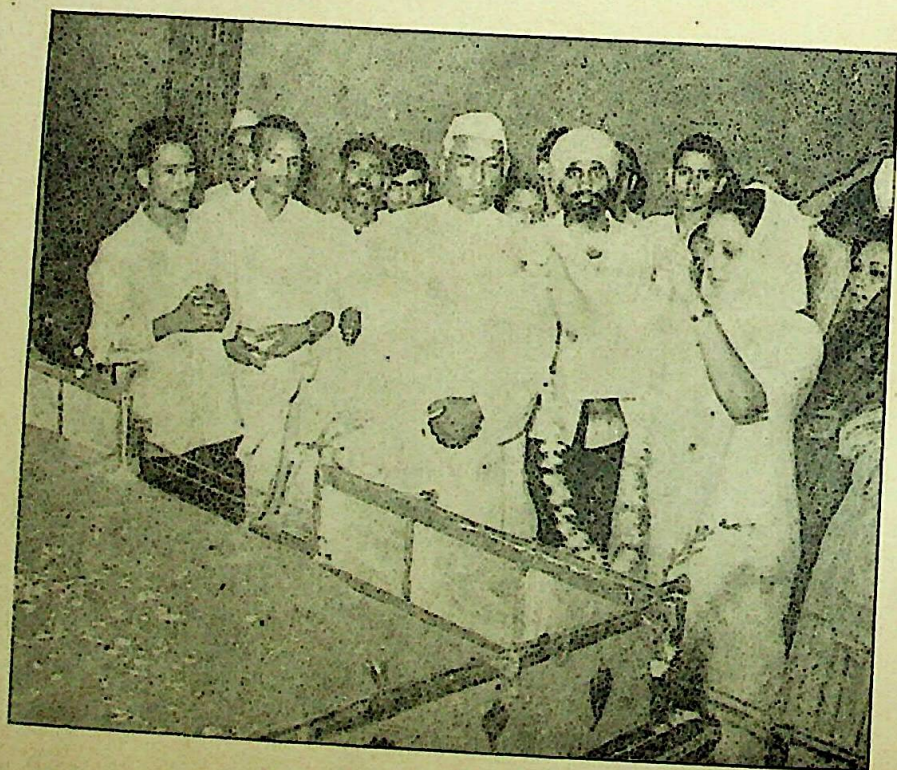
राजमाता श्रीकृष्ण-जन्मस्थानके सिंहासनपर
माल्यार्पण कर रही हैं।

श्रीकृष्ण-सन्देश

(श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघका मासिक मुखपत्र)

*

प्रबन्ध-सम्पादक

देवधर शर्मा

सम्पादक

श्रीव्यथितहृदय

*

प्रकाशक

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ, मथुरा

दूरभाष : ३३८

मूल्य

एक अङ्कका पचास पैसे

वार्षिक शुल्क

सात रुपया

आजीवन शुल्क

एकसौ इक्यावन रुपया

वर्ष—३] अक्टूबर १९६७ [अङ्क—३

विषय-सूची

		पृष्ठ संख्या
ऋद्धि सिद्धि देत दुःख दारिद हरति है	श्रीरामकिंकर उपाध्याय	१
शील, शक्ति और सौन्दर्य के केन्द्र-बिन्दु भगवान् श्रीराम	श्रीआदित्यस्वरूप शास्त्री	२
लोकमान्य तिलक और उनका गीता-रहस्य	श्रीदेवधर शर्मा	६
ययातिका राज्यादेश	श्रीपुलिनविहारी शर्मा	१०
आजके समाजके लिए गीताका अमृत	श्रीसीकर	१३
भव-सिन्धुका सुदृढ़ पोत	श्रीजगन्नाथ मिश्र गौड़ 'कमल' विद्यालंकार	१५
रस-सिद्ध, अमर संत–स्वामी हरिदासजी	श्रीअमियचरण	१८
गीता-धर्मका एक अमरकोष	श्रीकृष्णमुनि प्रभाकर	२३
महाकवि ग्वालके श्रीकृष्ण	श्रीभगवानसहाय पचौरी 'भवेश' एम.ए.	२६
दूर्वादल	संकलित	३०
जीवन-रथ चक्रका चालक-मन	श्रीकेशवकुमार	३४
सत्यभामा-श्रीकृष्णकी जन्म-जन्मकी प्रेयसी	एक श्रीकृष्ण भक्त	३८
सुन्दरमूकी अनुभूति	श्रीअविनाशचन्द्र	४०
प्रेम ही ईश्वर है	स्वामी शिवानन्द सरस्वती	४४
क्या दुःखोंसे मुक्ति पाना चाहते हैं ?	श्रीभगवती प्रसाद	४६
भगवान श्रीकृष्णकी दिनचर्या	श्रीभगवानदत्त चतुर्वेदी	४९
विश्वासकी विजय	श्रीसियारामदासजी साहित्यायुर्वेदाचार्य	५१
ब्रजका एक पावन तीर्थ-दाऊजी	श्रीजनार्दन मिश्र	५३
थाईलैण्डमें सनातन हिन्दू-धर्म	श्रीजितेन्द्रकुमार मित्तल	५६

मुद्रक : बम्बई भूषण प्रेस, मथुरा।

भगवान् श्रीकृष्णका जन्मस्थान :

मानव मात्रका अर्चनीय संस्थान

श्रीकृष्ण जन्म-स्थानपर सांस्कृतिक और धार्मिक वातावरण बनानेके लिये बिरलाजीने प्रशंसनीय सेवाएँ की हैं। उनकेलिये हमारी हार्दिक शुभकामना एवं धन्यवाद है। मैं यहाँके कार्यकर्त्ताओंको भी धन्यवाद देता हूँ, जो अपने कर्तव्यके प्रति जागरूक हैं।

विश्वनाथदास
भू० पू० राज्यपाल, उत्तर-प्रदेश।

श्रीकृष्ण जन्म-स्थानपर आना और इसके दर्शनका अवसर पाना मेरे लिये सौभाग्यका विषय है।

डी० एस० कोठारी
अध्यक्ष—विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली।

मैं महान और पवित्र श्रीकृष्ण जन्म-स्थानपर आनेका सौभाग्य प्राप्तकर अत्यन्त आनन्दित हुआ। मैंने यहाँ जिस आन्तरिक शान्ति और सात्विक वातावरणका अनुभव किया वह इससे पूर्व बहुत कम अवसरोंपर हुआ है।

ए० के० सेन
उपमहानिदेशक, आकाशवाणी, नई दिल्ली।

अनेक भक्तजनोंके साथ आज श्रीकृष्ण जन्म-स्थानके दर्शन किये। यात्री दलके सभी सदस्य यहाँके पवित्र और शान्तिमय वातावरणसे प्रभावित हुए। यहाँके व्यवस्थापकोंने बड़ी लगन, कठिनाई और उत्साहके साथ जन्मस्थानके उद्धारका व्रत लिया है। व्यवस्थापकोंको समग्र हिन्दू जातिका सहयोग और सहानुभूति अपेक्षित है। ईश्वर उनके कार्यमें सहायता दे तथा उनके द्वारा आयोजित निर्माण कार्यको शीघ्र ही पूरा करे।

माननीय स्वामी अभेदानन्दजी महाराज
त्रिवेन्द्रम्—केरल।

श्रीकृष्ण जन्म-स्थानका दर्शनकर बहुतही आनन्द हुआ। ईश्वरसे मेरी प्रार्थना है कि यह शुभ कार्य शीघ्रसे शीघ्र पूर्ण हो।

रामदयाल जालान
२ तिलक मार्ग, नई दिल्ली।

एक महान् ऐतिहासिक स्थानके दर्शनकर शान्ति और हर्षका अनुभव हुआ। भागवत भवनके निर्माण होने पर हम पुनः इस स्थानपर आनेकी आशा करते हैं।

जे पुरैनी
वैस्ट-कच० यू० ए०

श्रीकृष्ण जन्म-स्थानकी विस्मयजनक यात्रा स्मरणीय है।

डी० बीनैमी

पेरिस—फ्रांस

श्रीकृष्ण जन्म-स्थानके दर्शनसे अत्यन्त आनन्दित और प्रभावित हुआ।

ए० वोल्कर

(हॉलैण्ड)

श्रीकृष्ण जन्म-स्थानके दर्शनकर हम परम प्रसन्न हैं। हम यहाँ भविष्यमें पुनः भी आयेंगे।

टुकुंगो

टोकियो जापान।

श्रीकृष्ण जन्म-स्थान अत्यंत सुन्दर और भारतीय इतिहासका महान रत्न है।

प्रंग

जैकोस्लोवाकिया

आज मैं सपरिवार श्रीकृष्ण जन्म स्थान—इस पुण्य स्थलीको देखने आया। इस सुरम्य स्थानके दर्शनकर हृदय गद्गद् हो उठा और अपना गौरवशाली अतीत मूर्त्त हो उठा।

हरिश्चन्द्र पी० सी० एस०

डिप्टी कलक्टर—मथुरा।

भगवान् श्रीकृष्णकी इस पुनीत भूमिको देखकर वास्तवमें हृदय श्रद्धा, प्रेम तथा शांति से ओत-प्रोत हो गया। इस पुनीत स्मारकके अनुरूप ही यहाँके ट्रष्टियोंको इसका निर्माण करानेमें भगवान् सफलता प्रदान करेंगे।

कृष्णविहारी तिवारी

५८०६ ब्लोक—५ देवनगर, नई दिल्ली।

विगत एक सहस्र वर्षोंमें हमारे श्रद्धा स्थलों, हमारे मर्म स्थानोंपर जो प्रहार होते रहे हैं उन्होंने हमारी सम्पूर्ण जातिको कुंठित और स्तब्ध कर दिया है। पूज्य मालवीयजी महाराज और गोस्वामी गणेशदत्तजी आदि युग पुरुषोंने हमारे आत्मविश्वासको फिरसे जगाया और हमारी भाव-भूमिको पुनः संस्थापित किया है। मैं जब मथुरा आता हूँ तो मेरी आन्तरिक कामना यह देखनेकी रहती है कि श्रीकृष्ण जन्म भूमिके जीर्णोद्धारमें कितनी प्रगति हुई है। मैं यहाँसे लौटता हूँ तो मुझे यह आत्मविश्वास पुनः-पुनः प्राप्त हो जाता है कि सनातन धर्म अमर है। उसके ध्वंसावशेषोंपर बार-बार उसका पुनः संस्कार, पुनःनिर्माण होता रहेगा, यह ध्रुव सत्य है। यही उसकी शाश्वत सनातन विशिष्टता है। जंन्मभूमिमें काम करनेवाले हमारी जातिको नवजीवन देकर अमित पुण्यका लाभ कर रहे हैं।

मुरारीलाल

उपप्रधानाचार्य—बारहसेनी कालेज, अलीगढ़।

श्रीकृष्ण-सन्देश

*

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ।।

वर्ष ३] मथुरा, अक्टूबर १९६७ [अङ्क ३

ऋद्धि सिद्धि देत दुख दारिद हरति है

सघन अमामें जाको सुघर सनेह दीप दूरि अँधियारी
करि सुषमा भरति है ।
घोर भव घाम ते श्रमित ह्वै समीप आए जाकी कृपा
कौमुदी सुशीतल करति है ।।
करम करालते त्रसित ह्वै शरण आए हियमें छिपाइ
ओट आँचर करति है ।
राघवेन्द्र हृदय विहारिणी किशोरी अम्ब ऋद्धि सिद्धि
देत दुख दारिद हरति है ।।

श्रीरामकिंकर उपाध्याय

"जो माया सम्पूर्ण विश्वको नचाती है, जिसकी करनी किसीके भी देखनेमें नहीं आई, वही माया प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी भृकुटीके संकेतों पर अपने समाज-सहित नटीकी भाँति नृत्य करती है।"

शील, शक्ति और सौन्दर्यके केन्द्र-विन्दु—भगवान् श्रीराम

श्रीआदित्यस्वरूप शास्त्री

राम ! रामका नाम सर्वत्र व्याप्त है। भारतवर्षमें, हिमालयसे लेकर कन्याकुमारी तक जो विस्तृत धरती फैली हुई है, उसका कण-कण अहर्निश रामके नामसे ध्वनित होता रहता है। इस धरतीकी गोदमें जितने भी प्राणी निवास करते हैं, वे सभी-गरीव, अमीर, ऊँच-नीच बड़ी श्रद्धासे 'राम' का नाम लेते हैं। इस धरतीकी सीमाके वाहर-सुदूर-देशोंमें भी, पर-धर्मावलम्वियोंमें भी 'रामके' पवित्र नामकी गूँज सुनाई पड़ती है। प्रतिदिन प्रातः, मध्याह्न, और सायंकाल, रामका पवित्र नाम कोटि-कोटि कण्ठोंसे निकलकर, वायुकी भाँतिही वायुमण्डलमें फैलता रहता है,—जलकी भाँतिही सागरों और सरिताओंमें संचरण करता रहता है। दुःखमें, सुखमें, उत्थानमें, पतनमें, घरमें, निर्जनमें, शान्तिमें, युद्धमें—रामका नाम कोटि-कोटि प्राणियोंके प्राणोंमें 'प्राण' ही वना रहता है। कोटि-कोटि प्राणी हैं, जो विपत्तियोंके सागरमें, रामका नाम केवल इसलिए लेते हैं कि वे 'राम' नामकी शक्तिसे उन उत्ताल तरङ्गोंको दवादेंगे जो उन्हें भयाक्रांत कर रही हैं, और आश्चर्य है कि वे अपनी इच्छाओंके अनुसारही उन्हें दवा देनेमें समर्थ भी होते हैं। इसी प्रकार कोटि-कोटि प्राणी हैं जो दीनता या रोगोंसे उत्पीड़ित होनेपर 'राम' नामकी अखण्ड शक्तिका अंचल ग्रहण करते हैं और आश्चर्य है कि उन्हें अपने विश्वासके अनुसारही त्राण भी प्राप्त होता है।

वाल्मीकिजीसे लेकर आज तक लक्ष-लक्ष ऐसे सन्त, साधक, ऋषि, और भक्त हुए हैं, जिन्होंने राम नामकी शक्तिकाही अंचल ग्रहण करकेही हिंसक जीवोंके मध्यमें जीवन व्यतीत किए हैं, जिन्होंने 'राम' नामकी शक्तिसे उनकी हिंसक प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्तकी है, और जिन्होंने हिम-खण्डोंसे काँपती हुई कन्दराओंमें शान्तिपूर्वक वैठकर निश्चल समाधियाँ लगाई हैं। इतनाही नहीं, वाल्मीकिसे लेकर आज तक कितनेही ऐसे पुण्य-चरित ऋषि और सन्त भी हुए हैं, जिन्होंने 'राम' नामका 'जप' करके महत्त्वपूर्ण और अलौकिक सिद्धियाँभी

प्राप्तकी हैं। वाल्मीकिजीकी जीवन-कथाओंसे पता चलता है कि वे अपने जीवनके प्रारम्भ-कालमें एक दस्यु थे, पर उन्होंने "राम राम" की भी नहीं, केवल 'राम' का उल्टा 'मरा मरा' जपनेसे ही अलौकिक ज्ञान प्राप्त किया और उस रामायणकी रचनाकी, जो भारतवर्षमें ही नहीं, विश्वकी उन्नत भाषाओंमें भी एक सर्वोत्कृष्ट प्रबन्ध काव्य समझा जाता है। बीचके उन सम्पूर्ण भक्तों, साधकों, और ऋषियों महर्षियोंके नामोंका उल्लेख करना यहाँ सुलभ नहीं. जिन्होंने 'राम' नामका जप करनेसेही अलौकिक सिद्धियाँ प्राप्तकी हैं। फिर भी हम भक्ति कालके सन्त-प्रवर गोस्वामी तुलसीदासजीके नामोल्लेखके लोभका संवरण नहीं कर सकते, जिन्होंने 'राम' नामकी अखण्ड शक्तिसेही पुरातनकालके 'वाल्मीकि'को भक्ति कालमें नया जन्म दिया है, अर्थात् वाल्मीकिजीकी भाँतिही उन्होंने भी रामायणकी रचनाकी है और उनका रामचरितमानस भी विश्वकी उन्नत भाषाओंमें एक सर्वोत्कृष्ट प्रबन्ध काव्य माना जाता है। वाल्मीकिजीकी भाँति ही गोस्वामीजीकी जीवन कथाओंसे भी यह प्रकट होता है कि अपने जीवनके प्रथम चरणमें वे अत्यधिक साधारण मनुष्य थे, किन्तु जब उन्होंने रामके नामका जप किया, तो उन्हें रामायणकी रचनाकी ऐसी दिव्य शक्ति प्राप्त हुई, जिसके कारण वे युग-युगोंके लिये अमर बन गए।

रामकी सर्व व्यापकता और शाश्वतता हमें एक और चित्रमें प्राप्त होती है। जिन दिनों 'राम' इस धराधाम पर थे, उन दिनोंके ऋषियों, मुनियों, और सन्तोंको यदि उनका साक्षात् पुण्य दर्शन हुआ तो कोई विस्मयकी बात नहीं, क्योंकि उन दिनों तो वे स-शरीर विद्यमानही थे। किन्तु विस्मय और उल्लेखकी बात तो यह है कि उनके 'ब्रह्मस्थ' होनेके पश्चात् भी उनके भक्त, साधक, और प्रवर सन्त, इच्छा करने पर उनका साक्षात् दर्शन करते रहे हैं। सहस्रों ऋषियों, साधकों, सन्तों और भक्तोंकी जीवन-कथाओंमें 'श्रीरामके' साक्षात् पुण्य दर्शनकी बात मिलती हैं। कोई बड़ा से बड़ा तार्किक या वैज्ञानिकभी उन्हें 'असत्य' या कल्पित माननेका साहस नहीं कर सकता। क्योंकि सहस्रों सन्तोंकी ऐसी अलौकिक सिद्धियाँ प्रमाण रूपमें विद्यमान हैं, जो 'राम' नामकी देन हैं।

फिर क्या कोई यह सोच भी सकता है कि 'राम' मानव थे। 'राम' ने मानव-रूपमें धरतीपर अवश्य जन्म धारण किया था, पर वे पुरुषोत्तम थे, नारायण थे, पूर्ण ब्रह्म थे। यद्यपि उन्होंने अपने जीवनमें कभी और कहीं केवल प्रकट करनेके लिए अपने 'ब्रह्मत्त्वको' प्रकट नहीं किया, इसके प्रतिकूल उन्होंने सर्वत्र, सभी क्षेत्रोंमें 'आदर्श-पुरुष' की भाँतिही अपने कर्तव्योंके श्रेष्ठ चित्र निर्मित किए, पर उनके समयके सर्व-द्रष्टा ऋषियों-महर्षियोंको यह बात अवगत थी कि 'राम' निराकार ब्रह्म और साकार 'विष्णु' ही हैं, जो अखिल प्राणियोंके कल्याणके लिए धरतीपर अवतरित हुए हैं। इस सम्बन्धमें काकभुशुण्डिजीकी घोषणा उल्लेखनीय है। उन्होंने रामके स्वरूपका विवेचन इस प्रकार किया है—"भगवान् राम उपमा रहित हैं। उनकी अन्य कोई उपमा नहीं है। श्रीरामके समान 'रामही' हैं, वेदोंकी ऐसी ही उक्ति है।···जो माया सम्पूर्ण विश्वको नचाती है, जिसकी करनी किसीके भी देखनेमें नहीं आई, वही माया प्रभुश्रीरामचन्द्रजीकी भृकुटिके संकेतों पर अपने समाज सहित नटीकी भाँति

नृत्य करती है। श्रीरामजी वेही सच्चिदानंदघन हैं, जो अजन्मा, विज्ञान स्वरूप, रूप और बलके धाम, सर्वव्यापक एवं सर्वमय, अखण्ड, अनन्त, सम्पूर्ण अमोघ शक्ति, और छः ऐश्वर्योंसे युक्त भगवान् हैं। वे निर्गुण, महान्, वाणी और इन्द्रियोंसे परे, सब कुछ देखने वाले, दोष-रहित, अजेय, ममता रहित, निराकार, मोह रहित, माया रहित, नित्य सुखकी राशि, प्रकृतिसे परे, प्रभु, सदा सबके रूपमें बसने वाले, इच्छा रहित, विकार रहित, अविनाशी ब्रह्म हैं।''

वाल्मीकिजीने भी अपनी 'रामायण' में, जिसकी रचना श्रीरामचन्द्रजीके जीवन-कालमें ही हुई थी, रामकी सर्व व्यापकता, उनकी अजेयता, और उनके सर्व-शक्ति संपन्न पुरुषत्त्वका चित्रण इस प्रकार किया है—''महायशस्वी श्रीराम यदि कुपित होजायँ तो उन्हें अपने पराक्रम के द्वारा कोई भी वशमें नहीं कर सकता। वे अपने शरोंसे भरी हुई नदीके वेगको भी पलट सकते हैं तथा तारा, ग्रह, और नक्षत्रों सहित सम्पूर्ण आकाश मण्डलको मथित कर सकते हैं। वे श्रीमान् भगवान् राम समुद्रमें डूबती हुई पृथ्वीको ऊपर उठा सकते हैं, महासागरकी मर्यादाका भेदन करके समस्त लोकोंको उसके जलसे आप्लावित कर सकते हैं, तथा अपने वाणोंसे समुद्रके वेग अथवा वायुको भी नष्ट कर सकते हैं। वे महायशस्वी पुरुषोत्तम अपने पराक्रमसे सम्पूर्ण लोकोंका संहार करके पुनः नये सिरेसे प्रजाकी सृष्टि करनेमें समर्थ हैं।''

इसी प्रकार श्रीरामचन्द्रजीके जीवन कालके समस्त ऋषियों-महर्षियोंने, जिनमें गुरु वसिष्ठ, विश्वामित्र, भारद्वाज और अत्रि आदिका नाम विशेष उल्लेखनीय है, 'राममें' पूर्ण ब्रह्मकी घोषणा उनके जीवन कालमें ही की थी। श्रीराम अपने वन-गमनमें जिन-जिन ऋषियों-महर्षियोंकी कुटियों तथा आश्रमोंमें प्रविष्ट हुए, वहाँ 'पुरुषोत्तम' और 'नारायणके' रूपमेंही उनकी अर्चनाएँ और वंदनाएँ की गईं, और तो और, स्वयं परम शत्रु रावणने भी 'रामको' सर्वव्यापक, सर्वेश्वर, और भगवान् मानकरही उनसे आग्रह-पूर्वक वैर स्थापित किया। गोस्वामी तुलसीदासजीने अपनी निम्नांकित पंक्तियोंमें रावणके इसी मनोभावका चित्र अंकित किया है—

सुर रंजन भंजन महि भारा।
जौं भगवन्त लीन्ह अवतारा॥
तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ।
प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ॥
होइहि भजन न तामस देहा।
मन क्रम वचन मन्त्र दृढ़ एहा॥

इस प्रकार यह ध्रुव 'सत्यही' है कि राम परब्रह्म परमात्मा थे। उनका परमात्मत्व उनके जीवन कालमें ही प्रकट हो चुका था। वे पूर्ण ब्रह्म थे। उन्हें अपनी पूर्णताके लिए कुछ 'करणीय' नहीं था। किन्तु फिर भी उन्होंने अपनेको सीमामें-लघुतामें बाँधकर अपने उन समस्त कर्त्तव्योंका पालन दिव्यताके साथ किया, जिन्हें एक आदर्श पुरुषको करना चाहिए। रामके चरित्रमें सबसे बड़ी विशेषता यही है कि उसमें देवत्व और मानवत्वका एकीकरण बड़ी

सुचारुताके साथ हुआ है। 'राम' पूर्ण ब्रह्म परमात्मा थे, पर उन्होंने अपने संपूर्ण मानव चरित्रमें कहीं भी अपने 'ब्रह्मत्त्वको' प्रकट करनेके लिए अलौकिकताओंका आश्रय नहीं लिया है; इसके विपरीत उन्होंने शील, सौन्दर्य, मर्यादा, सत्य, और कर्तव्योंकी कठोर-भूमि पर, रेंग-रेंग कर ही अपने 'ब्रह्मत्वकी' शुभ लकीरें बनाई हैं। जीवनके प्रारम्भकालसे लेकर अन्त तक उन्हें विविध कर्तव्योंकी कठोर भूमियों पर ही चलना पड़ा है। उन्हें अपनी कर्तव्य-यात्राओंमें बड़े-बड़े विरोध-अवरोधोंके दुर्गम शैलोंको लाँघना पड़ा है। इतनाही नहीं, उन्हें ऐसी बड़ी-बड़ी जटिल समस्याओंके जालसे आगे बढ़ना पड़ा है, जिनकी ग्रन्थियोंमें पड़कर दशरथ जैसे शूरवीर नृपतिकी बुद्धि भी अपनी साँसें तोड़ चुकी थीं, और जिनकी भयावहताके अनुमान मात्रसे 'सर्वद्रष्टा' वसिष्ठका मन कंपित हो उठा था। पर 'राम' ने अपने शील, सौन्दर्यसेही सब पर विजय प्राप्त की। उन्होंने पूर्ण परमेश्वर होने पर भी जीवनके विविध क्षेत्रोंमें एक आदर्श मानवकी भाँतिही चलकर जो चिह्न बनाए हैं, वे केवल इसीलिए बनाए हैं, कि उनके पीछेकी उनकी सन्तानें भी उन्हींका अनुसरण करें। क्योंकि 'रामने' प्राणियोंके दुःख-द्वन्दोंको दूर करने और उनमें सद्भावना स्थापित करनेके लिए ही धरती पर जन्म धारण किया था। रामके जीवन कालमें ही उस 'राम राज्यकी' स्थापना हुई थी, जिसका चित्र गोस्वामी तुलसीदासजीने अपने रामचरितमानसमें इस प्रकार चित्रित किया है—

दैहिक, दैविक, भौतिक तापा।
राम राज काहू नहिं व्यापा॥

यह 'रामराज्य' रामके कठोर कर्तव्यों की भूमियोंकी यात्राकाही सुखद परिणाम था। यदि हम आज 'रामके' द्वारा निर्धारित किये हुए कर्तव्य-चिह्नोंका अनुसरण करें, तो हम आज भी 'रामकी सच्ची सन्तान बनकर 'रामराज्यके' सुखोंका उपभोग कर सकते हैं। आइए 'विजया' की पावन तिथि पर हम इसके लिए संकल्प-बद्ध हों।

भगवान् रामकी न्यायशीलता

"रावण! तुमने आज बड़ा भयंकर कर्म किया है,मेरी सेनाके प्रधान-प्रधान वीरोंको मार डाला है, इतनेपर भी थका हुआ समझकर मैं बाणों द्वारा तुम्हें मृत्युके अधीन नहीं कर रहा हूँ। निशाचरराज! मैं जानता हूँ तुम युद्धसे पीड़ित हो। इसलिए आज्ञा देता हूँ, जाओ लङ्कामें प्रवेश करके कुछ देर विश्राम करलो। फिर रथ और धनुषके साथ निकलो। उस समय रथारूढ़ रहकर तुम मेरा बल देखना।"

"लक्ष्मण! एकके कारण भूमंडलके समस्त राक्षसोंका वध करना तुम्हारे लिए उचित नहीं है। महाबाहो! जो युद्ध न करता हो, छिपा हो, हाथ जोड़कर शरणमें आया हो, युद्धसे भाग रहा हो, अथवा पागल होगया हो, ऐसे व्यक्तिको तुम्हें नहीं मारना चाहिए।"

[वा० रा० युद्ध०]

गीताके साँचेमें ढले हुए एक महान् कर्मयोगीकी दिव्य झाँकी

"यह एक विलक्षण बात है कि गीता जिस प्रकार वैयक्तिक नीति-धर्मकी दृष्टि वालोंको उपयोगी प्रतीत होती है, उसी प्रकार सामुदायिक जीवनका विचार करनेवाले भी इसे कामकी वस्तु समझते हैं। एक स्थानपर महात्मागांधी भी कहते हैं कि नैतिक व्यवहारकी दृष्टिसे विकट प्रश्न उपस्थित होनेपर गीताके स्थितप्रज्ञ-प्रसंगका एक श्लोक पढ़ते ही मेरे मनको जो शान्ति मिलती है, वह बाइबिलसे नहीं मिलती।"

लोकमान्य तिलक और उनका गीता-रहस्य

श्रीदेवधरशर्मा

लोकमान्य बालगंगाधर तिलकका पुण्यस्मरण करतेही हमारे सामने भारतमाताके एक ऐसे सपूतका चित्र उपस्थित हो जाता है, जिसकी देशभक्ति, त्याग-तपस्या, तेजस्विता, निर्भयता, वीरता, विद्वत्ता और वाग्मिता आदिकी कोई तुलना नहीं की जा सकती।

महात्मा गांधीके शब्दोंमें "लोकमान्य जनताके आराध्य-देव थे। उनके वचन जनताके लिए वेदवाक्य जैसे थे। देशभक्ति उनका धर्म थी। जितनी स्थिरता और दृढ़ताके साथ उन्होंने स्वराज्यके लिए काम किया, उतना अन्य किसीने नहीं किया। यद्यपि स्वराज्य उनके जीवन-कालमें नहीं आ सका, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वह उनके प्रयत्नोंसे कई वर्ष पास आ गया है। उनका जीवन खुली पुस्तकके समान, निष्कलंक और शुद्ध था। भारतकी भावी सन्तति उन्हें नवीन भारतके निर्माताके रूपमें मानेगी और यह कहकर स्मरण करेगी कि एक पुरुष-सिंह था, जो हमारे लिएही जन्मा और हमारे लिए ही मरा।"

वास्तवमें लोकमान्यका जीवन एक सच्चे कर्मयोगीका जीवन था। जिस समय वे शिक्षा समाप्त करके कार्य-क्षेत्रमें उतरे, उनके सामने आत्मोन्नतिके सभी द्वार खुले हुए थे। वे चाहते तो अपनी अनुपम योग्यताके आधारपर बड़ा-से-बड़ा पद प्राप्त करके वैभव और कीर्ति कमा सकते थे। किन्तु उन्होंने इन सबका मोह छोड़कर स्वदेशकी सेवाका कण्टकाकीर्ण मार्ग अपनाया और उसपर चलकर ऐसा आदर्श उपस्थित किया, जिससे लाखों-करोड़ों व्यक्तियोंको प्रेरणा मिली तथा मिलती रहेगी। वे एक ऐसी दीप-शिखा बन गए, जिसकी ज्योति न तो

कभी मलिन पड़ी और न भविष्यमेंही मलिन पड़ेगी। उनका चरित्र इतना उदात्त था कि जो भी उनके सम्पर्कमें आया, वही उनसे प्रभावित होगया। वे प्रत्येक समस्याका समाधान अपनी स्वतन्त्र बुद्धिके द्वाराही करते थे और जब किसी निर्णयपर पहुँच जाते थे तो उसे क्रियान्वित करनेके लिए अपनी सारी शक्ति लगा देते थे। उन्हें इस बातकी कभी कोई चिन्ता नहीं होती थी कि उनके समकालीन नेतागणके विचार उनसे मेल खाते हैं या नहीं ? कई बार उन्होंने महात्मागाँधी तककी मान्यताओंका खण्डन कर डाला। एकबार तो प्रसंग-विशेपमें यहाँतक लिख दिया कि "राजनीति सांसारिक व्यक्तियोंका विपय है, साधुओंका नहीं। मैं महात्मा बुद्धके इस सिद्धान्तको नहीं मानता कि क्रोध-नाशका उपाय केवल प्रेम है। मैं तो भगवान् कृष्णके इस उपदेशको मानता हूँ कि जो तुमसे जैसा व्यवहार करे, उसके साथ तुम वैसा ही व्यवहार करो।"

लोकमान्य तिलकने अपनी मित्र-मण्डलीके सहयोगसे सर्वप्रथम सार्वजनिक सेवाका शुभारम्भ शिक्षाके क्षेत्रमें "न्यू इंगलिश स्कूलकीस्थापना" द्वारा किया। उस स्कूलका उद्देश्य यह था कि उसके द्वारा राष्ट्रीयताका प्रचार-प्रसार हो और उसमें स्वल्प साधनवाले छात्र भी शिक्षा पा सकें। सब जानते हैं कि इस लक्ष्यमें लोकमान्यको आशातीत सफलता मिली और अल्पकालमें ही वह स्कूल अत्यन्त लोकप्रिय हो गया।

आगे चलकर लोकमान्यने अपनी मित्र-मण्डलीके सहयोगसे "मराठा" और "केसरी" नामक पत्रोंका प्रकाशन प्रारम्भ किया। "मराठाका" उद्देश्य अंग्रेजी पढ़े-लिखे भारतीयोंके सामने राष्ट्रीय दृष्टिकोण प्रस्तुत करना था। किन्तु "केसरी" प्रारम्भसेही सर्वसाधारण जनता का पत्र था। उसका लक्ष्य सोई हुई भारतीय प्रजाको जगाना था। लोकमान्यने उसके प्रथम पृष्ठपर पण्डितराज जगन्नाथका एक ऐसा श्लोक छापना प्रारम्भ किया, जो उनकी भावनाओं का प्रतीक था और जिसका आशय यह है कि "मदान्ध गजराज, तू इस बीहड़ वनमें एक क्षणके लिए भी मत ठहर। क्योंकि इसकी पर्वत-गुफामें सिंहोंका राजा सोया हुआ है, जिसने तुम्हारे जैसे गजराजोंकी भ्रान्तिमें बड़े-बड़े शिलाखण्डोंको अपने कठोर नखोंसे विदीर्ण कर दिया है।" इस श्लोकके निमित्तसे लोकमान्यने अंग्रेजोंको यह चेतावनी दी थी कि "सावधान हो जाओ। जब हमारे देशकी प्रजा जाग जायेगी तब तुम्हारी खैरियत नहीं है।" कहनेकी आवश्यकता नहीं कि लोकमान्यने अपने जीवनमेंही भारतीय जनतारूपी सिंहको जागते हुए देख लिया और यह भी देख लिया कि उसकी दहाड़से समुद्रपारके शक्तिशाली अंग्रेज घबराकर थर-थर काँप रहे हैं।

तिलक महाराजकी सूझ-बूझ और आन्दोलन-शैली बड़ी विलक्षण थी। उन्होंने महाराष्ट्रमें बहुत प्राचीनकालसे मनाए जा रहे गणपति-महोत्सवको एक नया रूप देकर उसे सामाजिक एकता स्थापित करनेका माध्यम बना दिया। इसीप्रकार शिवाजी-महोत्सवका आयोजन करके वे राजनीतिक जागृति फैलानेमें सफल हुए। फिर बंगभंग और होमरूल आदि आन्दोलनोंमें सक्रिय भाग लेकर तो उन्होंने सारे भारतको झकझोर दिया।

किन्तु भारतीय प्रजामें सर्वाधिक साहसका संचार तब हुआ, जब लोकमान्यने यह

घोषणाकी कि "स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और हम उसे लेकर रहेंगे।" इस शंखनादसे सारा राष्ट्र शक्ति-समन्वित होकर जाग उठा और इस प्रकार हुङ्कार करने लगा कि उससे अंग्रेजोंका सर्वसमर्थ शासन हिल गया और घबराकर दमन-चक्र चलानेपर उतारू होगया। लोकमान्यपर राजद्रोहके अभियोग चले और उन्हें कारावासका दण्ड भोगना पड़ा। एक ऐतिहासिक अभियोगके मध्य जब अंग्रेज न्यायाधीशने लोकमान्यसे पूछा कि "तुम क्या कहना चाहते हो?" तब उन्होंने निर्भीक भावसे यह उत्तर दिया—'मुझे केवल यही कहना है कि यद्यपि जूरीने मुझको दोषी ठहरा दिया है किन्तु मैं दृढ़तापूर्वक कहता हूँ कि निर्दोष हूँ। तुम्हारे न्यायालयकी अपेक्षा संसारका शासन करनेवाली शक्ति बहुत ऊँची है। सम्भवत: उसकी यही इच्छा है कि मैं जिस ध्येयका प्रतिनिधि हूँ, वह मेरे स्वतन्त्र रहनेकी अपेक्षा मेरी जेल-यात्राके दु:खसे अधिक फल-फूल सकेगा।"

इसप्रकार लोकमान्य तिलकको अनेक बार अंग्रेजी राज्यके न्यायालयोंका सामना करके कारावासका दण्ड भोगना पड़ा। कारावासके कष्टोंके कारण उनका स्वास्थ्य जर्जर हो गया, किन्तु वे बिना हारे-थके, जीवनके अन्तिम क्षणतक अंग्रेजी राज्यकी जड़ उखाड़नेमें लगे रहे।

लोकमान्य तिलक जितने बड़े राजनीतिक राष्ट्रनेता थे, उतनेही बड़े अनुसन्धानकर्ता और दार्शनिक विद्वान्‌भी थे। उन्होंने अंग्रेजी भाषामें अनुसन्धान-विषयक दो ग्रन्थ विद्वज्जगत् को दिए। एक ग्रन्थका नाम "ओरियन" और दूसरे ग्रन्थका नाम "आर्कटिक होम" है। इन दोनों अनुसन्धान-ग्रन्थोंकी चर्चा सारे संसारमें हुई और बड़े-बड़े देशी-विदेशी मनीषियोंने लोक-मान्य तिलकके पाण्डित्यपर दाँतों तले उँगली दबायी।

किन्तु तिलकने "गीता-रहस्यके" रूपमें संसारको जो अनमोल देन दी है, वह सर्वथा अद्वितीय है। जिस समय गीता-रहस्यका प्रकाशन हुआ, उसके परम्परा विरुद्ध नवीन दृष्टिकोण के कारण देश-विदेशके विद्वानोंमें एक हलचल-सी मच गयी। सर्वप्रथम स्वामी शंकराचार्यने गीताका ज्ञानपरक भाष्य करके उसे अपने अद्वैतवादका समर्थक ग्रन्थ सिद्ध किया था। उसके उपरान्त स्वामी रामानुजाचार्य, स्वामी वल्लभाचार्य आदिने भी अपने-अपने सम्प्रदायगत सिद्धान्तोंके अनुसार गीताकी टीकाएँ लिखीं। तबसे यह ग्रन्थ-रत्न भिन्न-भिन्न सम्प्रदायोंकी पुष्टिका साधन तो बन गया, किन्तु सामान्य जनके लिए व्यावहारिक दृष्टिसे उसकी उपयोगिता नहीं के बराबर रह गयी। लोकमान्यतिलक गीता-जैसे उपयोगी ग्रन्थके उन एकांगी भाष्योंसे सन्तुष्ट नहीं थे। अत: उन्होंने "गीता-रहस्यमें" प्राचीन भाष्यकारोंके मतवादोंका खण्डन करते हुए यह सिद्ध किया कि ब्रह्मज्ञान जिस प्रकार कर्म-संन्यासमें है, उसी प्रकार कर्मयोगमेंभी है। तात्पर्य यह कि जिस प्रकार ज्ञानयुक्त कर्मसन्यास मोक्षप्रद है, उसी प्रकार ज्ञानयुक्त कर्मयोग भी स्वतन्त्र रूपसे मोक्षदायक है—बल्कि कर्मसन्यासकी अपेक्षा कर्मयोग कहीं अधिक श्रेष्ठ और सुकर है।

गीता ज्ञानका समुद्र है। उसमें विद्वानोंको प्रत्येक कालके लिए उपयोगी सिद्धान्त-रत्न प्राप्त होते रहते हैं। लोकमान्य जैसे मनीषीकोभी अपने समयके अनुसार गीतामें ज्ञानमय

कर्मयोगका सिद्धान्त मिला और उन्होंने उसे गीताके आधारसेही प्रतिपादित किया। यह एक विलक्षण बात है कि गीता जिस प्रकार वैयक्तिक नीति-धर्मकी दृष्टिवालोंको उपयोगी प्रतीत होती है, उसी प्रकार सामुदायिक जीवनका विचार करने वाले भी उसे कामकी वस्तु समझते हैं। एक स्थानपर महात्मागान्धीभी कहते हैं कि "नैतिक व्यवहारकी दृष्टिसे विकट प्रश्न उत्पन्न होनेपर गीताके स्थितप्रज्ञ-प्रसंगका एक श्लोक पढ़तेही मेरे मनको जो शान्ति मिलती है, वह बाइबिलसे नहीं मिलती।"

श्रीतिलक महाराज गीता-रहस्यकी स्वलिखित प्रस्तावनाके अन्तमें स्पष्ट रूपसे कहते हैं कि "निरी स्वार्थबुद्धिसे गृहस्थी चलाते-चलाते जो लोग हार-थक गए हों, उनका समय बितानेके लिए अथवा संसारसे छुटकारा पानेकी तैयारीके लिए गीता नहीं कही गयी है। गीताशास्त्रकी रचना तो इसलिए हुई है कि वह मोक्ष-दृष्टिसे संसारमें कर्म करनेकी विधि बतावे और तात्विक दृष्टिसे इस बातका उपदेश करे कि संसारमें मनुष्य-मात्रका सच्चा कर्तव्य क्या है?"

इस प्रकार लोकमान्य तिलकने "गीता-रहस्य" द्वारा सारे संसारके समक्ष वैयक्तिक और सामुदायिक इन दोनों साधनोंकी दृष्टिसे गीताकी श्रेष्ठता सिद्ध करदी है। उन्होंने "गीता-रहस्य" में यही दिखलाया है कि गीतारूपी हीरेका ज्ञानयुक्त कर्मयोग नामक नया पहलू अपने प्रकाशसे समस्त जगतको प्रकाशित और दैदीप्यमान कर सकता है। अतः लोकमान्यतिलक और उनका "गीता-रहस्य" दोनोंही हमारे लिए वन्दनीय एवं पठनीय हैं।

आकाशवाणी मथुराके[सौजन्यसे]

धर्म

मैं आपको देखता हूँ तो दुःख अनुभव करता हूँ, क्योंकि किसी भी भाँति बिना सोचे विचारे मूर्च्छित रूपसे जिए जाना जीवन नहीं, वरन् धीमी आत्महत्या है, क्या आपने कभी सोचा कि आप अपने जीवनके साथ क्या कर रहे हैं? क्या आप सचेतन रूपसे जी रहे हैं? क्योंकि यदि हम अचेतन रूपसे बहे जारहे हैं और जीवनके सचेतन सृजनमें नहीं लगे हैं तो सिवाय मृत्युकी प्रतीक्षाके हम और क्या कर रहे हैं? जीवन तो उसीका है जो उसका सृजन करता है। आत्मसृजन जहाँ नहीं, वहाँ आत्मघात है। मित्र, जन्मकोही जीवन मत मान लेना। इसलिए कहता हूँ कि अधिक लोग ऐसाही मान लेते हैं। जन्म तो प्रच्छन्न मृत्यु है। वह तो आरम्भ है और मृत्यु उसकाही चरम विकास और अन्त। वह जीवन नहीं, जीवनको पानेका एक अवसर भर है। लेकिन जो उसपरही रुक जाता है वह जीवन पर नहीं पहुँच पाता। जन्म तो जीवनके अनगढ़ पत्थरको हमारे हाथोंमें सौंप देता है। उसे मूर्ति बनाना हमारे हाथोंमें है। यहाँ कलाकार और कलाकृति और कला और कलाके उपकरण सभी हमही हैं। जीवनके इस अनगढ़ पत्थरको मूर्ति बनानेकी अभीप्सा धर्म है।

धर्म जीवनसे भिन्न नहीं है जो धर्म भिन्न है, वह मृत है।

मैं कैसे जीता हूँ, वही मेरा धर्म है। यह मत पूछिए कि मेरा कौन-सा धर्म है। क्योंकि धर्म बस धर्म है। और उसमें किसी विशेषणको लगानेका क्या सवाल? जहाँ विशेषण है और विक्षेपणका आग्रह है, वही धर्म, धर्म नहीं है।

[आचार्य रजनीश]

"देवदूत, तुमने अपना कार्य बड़ी बुद्धिमत्ताके साथ पूर्ण किया है। पर मुझे दुःख है कि मैं तुम्हारे स्वर्गमें न जा सकूँगा। मैं अपने तप, अपने पवित्र भाव, अपनी साधना, और अपने धर्माचरणसे भूलोककोही स्वर्गके समान दिव्य बनाना चाहता हूँ।"

ययातिका राज्यादेश

श्रीपुलिनविहारीशर्मा

देवराज इन्द्रकी सभा! देवराजइन्द्र सिंहासनपर विराजमान थे। देवर्षि नारद परिभ्रमण करते हुए इन्द्रकी राज सभामें जाकर उपस्थित हुए। इन्द्रने उनका आदर-पूर्वक अभिवादन किया, उन्हें सर्वोच्च आसन प्रदान किया। इन्द्रने विनीत स्वरमें प्रश्न किया—"देवर्षि, आप इस समय कहाँसे आ रहे हैं?"

नारदने उत्तर दिया—"मैं भूलोकसे आ रहा हूँ देवराज! भूलोकमें नहुष-पुत्र ययातिके पुण्य आचरणोंने मेरे मनको विमुग्ध कर लिया है। सोचा, आपसे भी ययातिके पवित्र आचरणोंकी चर्चा करूँ!"

देवराजइन्द्रने प्रश्न किया—"ययातिके वे कौन पवित्र आचरण हैं देवर्षि, जिनसे आपका मनभी विमोहित हो उठा है।"

नारदने उत्तर दिया—"ययाति बड़े ही धर्मात्मा, बड़े ही शक्तिशाली और बड़े प्रतापवान् नृपति हैं देवराज! उन्होंने सौ अश्वमेध और सौ वाजपेय यज्ञ करके अपूर्व कीर्ति, और शक्ति प्राप्त की है।"

देवराज इन्द्रके मुखसे साश्चर्य निकल पड़ा—"सौ अश्वमेध और सौ वाजपेय यज्ञ!"

इन्द्रके मनमें चिन्ताकी लहरें उत्पन्न हो उठीं। वह सोचने लगा, कहीं ययाति भी अपने पिता नहुषकी तरह शक्ति सम्पन्न होकर स्वर्गपर अपना अधिकार स्थापित न करले!"

देवराज इन्द्रने भयभीत होकर ययातिको स्वर्गमें बुलाकर उनका आदर-अभिनन्दन करनेका निश्चय किया।

इन्द्रने अपने कुशल सारथी मातलिको भूलोकमें ययातिके पास भेजा।

मातलिने ययातिकी सेवामें उपस्थित होकर उन्हें देवराज इन्द्रका सन्देश दिया। मातलिने ययातिके सम्मुख स्वर्गके सुखों और वैभवोंका चित्र अंकित किया। उसने भूलोकके दुःखों और अभावोंका भी चित्रण किया। इस प्रकार मातलिने बड़ेही कौशलसे यह प्रयत्न किया कि किसी प्रकार ययातिके मनमें स्वर्गके सुखोंके लिए आकर्षण उत्पन्न हो जाय और वे भूलोकको छोड़कर उसके रथपर स्वर्ग-गमनके लिए बैठ जायें।

ययातिने बड़े ध्यानसे मातलिकी बातें सुनी और उनपर विचार किया। ययातिकी आकृतिपर गम्भीरता नाच उठी। उन्होंने गम्भीर स्वरमें ही उत्तर दिया—"देवदूत, तुमने अपना कार्य बड़ी बुद्धिमत्ताके साथ पूर्ण किया है। पर मुझे दुःख है कि मैं तुम्हारे स्वर्गमें न जा सकूँगा। मैं अपने तप, अपने पवित्र भाव, अपनी साधना और अपने धर्माचरणसे भूलोकको ही स्वर्गके समान दिव्य बनाना चाहता हूँ।"

मातलि निराश होकर अपने स्वर्गमें लौट गया।

ययातिने अपने चरोंको बुलाया और उनके हाथोंमें अपने आदेशकी प्रतिलिपियाँ देकर कहा—"दूतो, तुम मेरे राज्यके देश-देशोंमें जाओ। मेरी सम्पूर्ण प्रजाको मेरे आदेश-पत्र पढ़-पढ़कर सुनाओ। प्रजाके जन-जनसे कहो कि वे मेरे आदेशका पालन करें—आदेश पत्रमें लिखे हुए शब्दों और वाक्योंका मन्त्रकी भाँति जाप करें।"

ययातिके चर देश-देशोंमें फैल गए और प्रजाको ययातिके आदेश-पत्र सुनाने लगे। ययातिका वह आदेश-पत्र! उसमें लिखा था—

'भगवान् केशव सबका क्लेश हरनेवाले, सर्वश्रेष्ठ, आनन्द स्वरूप, और परमार्थ तत्त्व हैं। उनका नाममय अमृत सब दोषोंको दूर करने वाला है। महाराज ययातिने इस अमृतको यहीं लाकर सुलभ कर दिया है। संसारके लोग इच्छानुसार उसका पान करें।'

'भगवान् विष्णुकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है। उनके नेत्र कमलके समान सुन्दर हैं। वे जगतके आधारभूत और महेश्वर हैं। उनका नाममय अमृत दोषोंको दूर करनेवाला है। महाराज ययातिने उस अमृतको यहीं लाकर सुलभ कर दिया है। संसारके लोग इच्छानुसार उसका पान करें।'

'भगवान् विष्णु पापोंका नाश करके आनन्द प्रदान करते हैं। वे दानवों और दैत्योंका संहार करनेवाले हैं। उनका नाममय अमृत सब दोषोंको दूर करने वाला है। महाराज ययातिने उस अमृतको यहीं लाकर सुलभ कर दिया है। संसारके लोग उसका इच्छानुसार पान करें।'

'यज्ञ भगवान्के अंग स्वरूप हैं। उनके हाथमें सुदर्शन चक्र शोभा पाता है। वे पुण्यकी निधि और सुख रूप हैं। उनके स्वरूपका कहीं अंत नहीं है। उनका नाममय अमृत सब दोषों को दूर करनेवाला है। महाराज ययातिने उस अमृतको यहीं लाकर सुलभ कर दिया है। संसारके लोग इच्छनुसार उसका पान करें।'

'सम्पूर्ण विश्व उनके हृदयमें निवास करता है। वे निर्मल, सबको आराम देनेवाले, 'राम' नामसे विख्यात, सबमें रमण करनेवाले, तथा 'मुर' दैत्यके शत्रु हैं। उनका नाममय अमृत सब दोषोंको दूर करनेवाला है। महाराज ययातिने उस अमृतको यहीं लाकर सुलभ कर दिया है। संसारके लोग उसका इच्छानुसार पान करें।'

'भगवान् केशव आदित्य स्वरूप, अन्धकारके नाशक, मल रूप कमलोंके लिए चाँदनी रूप हैं। उनका नाममय अमृत सब दोषोंको दूर करनेवाला है। महाराज ययातिने उसे यहाँ लाकर सुलभ कर दिया है। सब लोग उसका पान करें।'

'जिनके हाथमें नंदन नामक खंग है, जो मधुसूदन नामसे प्रसिद्ध, लक्ष्मीके निवास स्थान, सगुण और देवेश्वर हैं, उनका नामामृत सब दोषोंको दूर करनेवाला है। महाराज ययातिने उसे यहीं लाकर सुलभ कर दिया है। सब लोग उसका पान करें।'

महाराज ययातिने अपने आदेश-पत्रके ही द्वारा अपनी प्रजाको आदेशित किया कि वह प्रतिदिन केशव भगवान्‌की आराधना करे—उनके नाम और गुणोंका कीर्तन करे।

क्या ययातिके आदेश-पत्रकी प्रतिलिपियाँ आजके शासकभी प्रजामें वितरित करेंगे और जन-जनको भगवान् वासुदेवकी आराधनाके लिए प्रोत्साहित करेंगे। यदि वे ऐसा करें तो सचमुच महाराज ययातिके शासनकालकी भाँति ही आजका लोक और आजकी पृथ्वीभी स्वर्ग बन जाय।

*

जगपति विहरत नित जल थल मैं

अतल सुतल तल विचल अचल चल,
भल खल दल हल चल छल बल में।
कुसुमित किसलय कुबलय कुल कल,
कलित कलिन कलरव कल कल में॥
अचिर अजर अज अजित अमित अमि,
अनघ अलख अति अनिल अनल में।
सुरति सुमति धर कुमतिन छयकर,
जगपति विहरत नित जल थल में॥
सरवर सरित सुरुचि सुचि सुरसरि,
सकल सुफल सम सुजल सफल में।
धरनि धरम धरमिन धुरि धुर धव,
धुनि धुन धुस धन धनिक धवल में॥
नवनिधि निकर निखिल नभ निरमित,
नटवर निरखत नखत नवल में।
सुरति सुमति धर कुमतिन छयकर,
जगपति विहरत नित जल थल में॥
परिध परित पथ पथिक परमपद,
परिचित परिजन पर परिमल में।
मनसिज मनमथ मदन मनन मन,
मणिमय मरकत महत महल में॥
बहत बरत विलमत बिगरत बहु,
विलसत बकसत बसत बगल में।
सुरति सुमतिधर कुमतिन छयकर,
जगपति विहरत नित जल थल में॥

श्रीशिवकुमार मिश्र 'मयूर'

जीवनोपयोगी अमृत-तुल्य गीताका संदेश

"परमेश्वर स्वयं वहां हैं, जहां इस बातपर बल है कि सबकी सहायताहो, धर्मकी प्रतिष्ठाहो, दुराचारका अन्तहो, प्रेमका प्रसारहो, एवं सेवा व लोक संग्रहके कर्महों।"

आजके समाजके लिए गीताका अमृत

श्रीसीकर

राजकाजसे वर्षोंसे दूर रहनेके कारण उसकी नीतिका ज्ञान भली प्रकार नहीं, समाचार-पत्रोंपर भी एक दृष्टि भर डाल लेनेका ही समय मिल पाता है, शेष अपने शरीर और लोक-सेवाके कार्योंमें व्यतीत होता रहता है। परन्तु फिर भी यह प्रत्यक्ष अनुभवमें आ रहा है कि विद्यालयोंमें राजनीतिके अनुसार धार्मिक शिक्षाके हटजानेसे युवक-युवतियोंमें अशृंखलता की वृद्धि दिन-दिन होती जा रही है। यद्यपि यह निर्विवाद है कि शताब्दियोंकी परतंत्रतासे मुक्ति पानेके पश्चात् इस युगमें, इस देशकी विशेष परिस्थितियोंमें, समाजवाद ही से निस्तार हो सकता है और इस कारण राजनीतिमें किसी साम्प्रदायिक धर्मकेलिए स्थान ही नहीं होना चाहिए, फिरभी धार्मिक शिक्षाके सम्पूर्ण अभावके दुष्परिणामोंसे जो अनर्थ बढ़ता जा रहा है, उसपरसे भी तो दृष्टि अवतकके समान अब और अधिक नहीं हटाई जा सकती। प्रजामें धर्मके सत्य स्वरूपकी धारणा उत्पन्न करनेका समय अब आ गया है।

परमेश्वरके अस्तित्वमें प्रायः सभी धर्मावलम्बियोंका विश्वास है। परमेश्वर स्वयं वहाँ हैं, जहाँ इस बात पर बल है कि सबकी सहायता हो, धर्मकी प्रतिष्ठा हो, दुराचारका अन्त हो, प्रेमका प्रसार हो एवं सेवा व लोक-संग्रहके कर्म हों। मनको शान्ति देनेवाले, बुद्धिको निर्मल करनेवाले, चित्तको प्रसन्न और प्रफुल्लित करनेवाले तथा अहंकारको दबा देनेवाले कर्म विशुद्ध कर्म कहे जाते है। धर्म वही सच्चा, सात्विक और निर्विकार है, जो परिवार, समाज, देश एवं संसारमें परस्पर सद्भाव अथवा शांतिका वातावरण स्थापित करनेमें सहायक हो। विज्ञानकी उन्नतिके इस युगके लिए—जिसमें संसार इतना छोटा पड़ गया है और सात समुद्र पारके देश भी इतने समीप आ गए हैं—ऐसे ही सात्विक धर्मकी आवश्यकता प्रतीत होती जा रही है। देशदेशान्तरोंके महापुरुषोंका कर्तव्य है, कि मिलकर ऐसे नवीन धर्मके निर्माणमें अपनी शक्तिका प्रयोग करें।

मध्यकालीन धर्मोंके सिद्धान्तोंकी पृथकतासे वर्तमानकालीन विषमताका मिटना सम्भव नहीं। प्रत्येक सिद्धान्तकी उन्नति-मार्गमें सफलताका एक युग हुआ करता है। नए युगमें नए सिद्धान्तकी अनिवार्यता दिन-दिन सिद्ध होती जा रही है।

गीतामें सदाचार और न्याय सम्बन्धी उपदेशोंका संग्रह इस प्रकार है—भयका अभाव, अन्तःकरणकी स्वच्छता, तत्वज्ञान और उसके अनुसार निरन्तर आचरणमें स्थिति, सात्विक दान, इन्द्रियोंका दमन, यज्ञादि अर्थात् लोक-संग्रहके लिए त्याग भावसे उत्तम कर्मोंका करना, शास्त्रों—अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषोंके अनुभवोंके संग्रहका पठन-पाठन, स्वधर्म पालनके लिए कष्ट सहन करना, एवं शरीर और इन्द्रियों सहित अन्तःकरणकी सरलता तथा मन वाणी और शरीरसे किसीको कष्ट न देना, यथार्थ और प्रियभाषण, अक्रोध, कर्मोंमें कर्तापनके अभिमानका त्याग, चित्तकी चंचलताका अभाव, किसीकी निन्दा न करना, सब भूत प्राणियोंमें हेतु रहित दया, इन्द्रियोंका विषयोंसे संयोग होनेपर आसक्ति न होना, कोमलता, शास्त्रके विरुद्ध आचरणसे लज्जा, व्यर्थ चेष्टाओंका अभाव, तेज, क्षमा, धैर्य, बाहर-भीतरकी शुद्धि, किसीसे शत्रुभावका न होना और अपनेमें पूज्यताके अभिमानका अभाव, दम्भाचरणका अभाव, श्रद्धा-भक्ति सहित माता-पिता-गुरुकी सेवा, अन्तःकरणकी स्थिरता, जन्म-मृत्यु, जरा रोग आदि दुख-दोषोंके कारणोंपर बार-बार विचार करना, गृह धनादिमें लिप्त न रहना, प्रिय-अप्रियकी प्राप्तिमें उनमत्तता अथवा शोकादि विकारोंका न होना, जगतकर्त्तामें भक्ति, एकान्त और शुद्ध देशमें रहनेका स्वभाव, निन्दा स्तुतिको समान समझना अर्थात् उसके कारण अपने कर्तव्य कर्मसे विचलित न होना, जिस तिस प्रकारसे शरीरका निर्वाह होनेमें सदा संतुष्ट रहना—यह सब सर्वव्यापी मानव धर्मके नियमोंका विस्तार है। जितना जिस व्यक्ति एवं समाज तथा देशमें इनका पालन होगा, उतना ही वह कल्याणका भागी बनेगा।

भेदभावही सब उपद्रवोंकी जड़में रहता है। इसीसे परस्परके वैमनस्यकी उत्पत्ति होती है। पृथक्तासे उत्पन्न संघर्षोंसे देश व समाजको बचाए रखनेके उद्देश्यसे राज्यके लिए अनिवार्य है कि ऐसे संकुचित धर्मोंको राज सम्बन्धी विषयोंमें लिपायमान न होने दे। केवल सर्वव्यापी नियमोंका समूहही सत्य मानव धर्म कहलानेके योग्य है।

गीतामें भगवान्‌की असंदिग्ध शब्दोंमें स्पष्ट घोषणा है कि भेदभावके सब साम्प्रदायिक धर्मोंको छोड़-छाड़कर सबकी एकता-स्वरूप भगवान्‌की शरणमें आओ अर्थात् सारे विश्वको सबके आत्मा-परमात्मा हीके अनेक रूप समझकर विश्वकी एकताके अनुभव रूप विश्वधर्मको स्वीकार करो और अपनी-अपनी योग्यताके कर्तव्य कर्म भली भाँति करते रहो। ऐसा करनेसे कोई पापका बन्धन शेष न होगा।

व्यवहारिक वेदान्तके कर्तव्य शास्त्रमें 'सर्वभूतात्मैक्य'का प्रतिपादन है। यही सत्य धर्म-निधि है, जो गीता भण्डारसे प्राप्त है।

\+ \+ \+

त्रय तापोंसे विमुक्तिका एकमात्र साधन—श्रीकृष्णसन्देशका चिन्तन, पठन-पाठन।

ईश आराधनाका भक्ति-भाव पूर्ण निरूपण

> "कर्म-शक्तिसे बलवान् होकर संसारके द्वन्दोंपर विजय पानेके लिए मनोवृतिकी निर्मलता वांछनीय होगी। इस निर्मलताकी छायामें ही आराध्यकी पूजा सफल हो सकती है।"

भव-सिन्धुका सुदृढ़ पोत

श्रीजगन्नाथ मिश्र गौड़ 'कमल' विद्यालंकार

इस वृहद् विश्वको महार्णव या गहनकांतार कहा गया है। महार्णव निरन्तर उठती गिरती ऊर्मियोंसे अशान्त रहता है। अगम रन्तुओंसे घिरा हुआ, हिंसक जन्तुओंकी विकरालतासे व्याप्त गहन कांतार अपनी भयानकताका परिचय देता है। महार्णवकी ऊर्मियाँ क्या हैं? कांतारकी भयानकताका अर्थ क्या है? हिंसक पशु किसकी हिंसाकेलिये प्रवृत्त रहते हैं?

जिस दृष्टिसे संसारको महार्णव या गहनकांतार कहा गया है, उसी दृष्टिसे संसारकी विषमताके उभारको ऊर्मियां कहना उपयुक्त होगा। राग, द्वेष, मोह, मद और मत्सर हिंसक पशु हैं, उनके द्वारा उकसाया गया उपद्रव कांतारकी भयानकता हैं।

एक ओर संसारका ऐसा व्यवहारिक रूप है तो दूसरी ओर यह संसार कर्मक्षेत्र भी हैं। मानव यहाँ कर्मी बनकर आता है। दिन और रातकी परिधिसे घिरा हुआ, उसकेलिये कर्म करनाही अभिप्रेत है। कर्म-पोतपर चढ़कर उसे महार्णव पार करना है। कर्मका दीप जलाकर, उसके प्रकाशमें उसे कुहूयामिनीमें भी गहनकांतारकी दुर्गम राहोंको पहचानकर आगे बढ़ना है। इस कठिन यात्रामें मानवका सम्बल कर्म ही है। इस कर्मकी दिशा-निर्धारणके लिये आवश्यक है कि मानव अपने जीवन-पतवारको ऐसे प्रदर्शकके हाथोंमें दे, जो अपने अज्ञात संकेतोंसे उसे दिशा-ज्ञान देता जाय। यह प्रदर्शक वही हो सकता है, जिसने स्वयं इस सृष्टिका सृजन किया है और जो इस सृष्टिके रहस्यका नियामक भी है।

यह जड़ चेतनात्मक जगत्, जिसकी रचना-चातुर्य्यको देखकर बड़े-बड़े वैज्ञानिकोंको भी आश्चर्य्यित होना पड़ता है, सर्वशक्तिमान परमात्माकी निर्माण-कुशलताका प्रत्यक्ष प्रमाण है। वही परमात्मा सबका आदि, सबसे बड़ा, सर्वाधार, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी और सर्वरूप है। वही जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलयका कारणकरण है। इसीलिये गीताकी वाणी है कि ऐसे परमात्माका सदा सर्वदा स्मरण करते हुए मानव इस जगत्‌में ममता और आसक्तिका

त्याग करके कर्तव्यपालनमें अग्रसर रहे। विषयोंका उपभोग यथाविधि ऐसे कर्मोंके सम्पादनके लिए ही करे। इस प्रकार अपने पूरे जीवनको परमेश्वरके प्रति समर्पण कर दे। कर्मके रास्ते पर घने अंधेरेमें ज्ञान-ज्योति छिटकानेवाला परमात्माही आराध्य है। आराध्यके प्रति आत्म-समर्पणकी दृढ़ धारणाको आत्मसात् करनेकेलिये अपनी दिनचर्य्याको साधनाका रूप देना होगा। दिन-प्रतिदिनकी दिनचर्य्याके लिये पावन धर्म-ग्रन्थ आध्यात्म विचारोंकी ओर ले जाते हैं। लोग समझें या न समझें, पर दिन-रातके पल, पहर और क्षण कर्म और अकर्मको पहचाननेके लिये संकेत देते रहते हैं। शीतल सुषमायुत प्रातःकालमें एकान्त शांत प्रकृति पुकार उठती है:—

प्रातर्भजामि मनसा वचसामगम्यं
वाचो विभान्ति निखिला यदनुग्रहेण।
यन्नेतिनेतिवचनैर्निगमा अवोचं
स्तं देवदेवमजमच्युतमाहुरग्रयम्॥

—जो मन और वाणीसे अगम्य है, जिसकी कृपासे समस्त वाणी भास रही है, जिसका शास्त्र 'नेति-नेति' कहकर निरूपण करते हैं, जिस अजन्मा देवदेवेश्वर अच्युतको अग्रय (आदि) पुरुष कहते हैं, मैं उसका प्रातःकाल स्मरण करता हूँ।

कर्म-शक्तिसे वलवान होकर संसारके द्वन्द्वोंपर विजय पानेके लिये मनोवृतिकी निर्मलता वांछनीय होगी। इस निर्मलताकी छायामें ही आराध्यकी पूजा सफल हो सकती है। इसीलिये वेदकी वाणी है:—

"आ नो भद्राः कतवो यन्तु विश्वतः"

आराध्य--जिससे सब भूतोंकी उत्पत्ति हुई है और जो सर्व जगत्में व्याप्त है, उसकी अपने कर्मोंसे पूजा करके मनुष्य सिद्धिको प्राप्त होता है।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

आराध्यका आराधक वनकर अपने जीवन-पुष्पको अर्पित करके तथा स्मृतिसे उन्हें दूर न छोड़कर कर्मी अपने सुकर्म-पखेरूके पंखोंपर उड़ता है। उसकी इस उड़ानमें त्याग सद्भावोंकी दिशा ग्रहण किए हुए पवमान गति देता है। आराधककी यात्रा सफल होती है। वह संसारके त्रयतापकंटकाकीर्ण मार्गको विना कांटोंका कठोर स्पर्श पाये समाप्त कर लेता है। आराध्यकी आस्थासे परमानन्द प्राप्त करनेके लिये आराधकको सच्चा आराधक वनना पड़ता है और बनना पड़ता है कर्ममें क़र्तापनके अभिमानसे शून्य, राग-द्वेष और फल-कामनासे विरागी, भागवत-सेवा-भावसे श्रद्धा-नत, और हर्ष-शोकादि विचार-तरंगोंसे अन्यमनीक।

आराधकको इसप्रकार प्रार्थनामें लीन होना चाहिए:—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये॥

—हे सबका भरण-पोषण करनेवाले परमेश्वर, सत्यस्वरूप, आप सर्वेश्वरका श्रीमुख

ज्योतिमय सूर्य्यमंडलरूप पात्रसे ढका हुआ है । आपकी भक्ति-रूप सत्य-धर्मका अनुष्ठान करनेवाले मुझको अपने दर्शन करानेकेलिये उस आवरणको आप हटा लीजिए ।

आराध्यके स्वरूपको पूर्णरूपेण हृदयगत करलेनेपर आराधककी आत्मा पुकार उठती है—"हे देव ! मैं आपकी अहैतुकी कृपासे आपके अमृतमय स्वरूपको अपने हृदयमें धारण करनेवाला वन जाऊँ । मेरा मन शान्त और निश्चिन्त रहे, जिससे आपकी उपासनामें किसी प्रकारका विघ्न न पड़े । मुझे आपका कल्याणमय यश सुननेको मिलता रहे ।" इसप्रकारकी गूँजसे प्रातः, सन्ध्या और रात्रिकी घड़ियाँ मुखरित होती रहेंगी और उनके मुखर क्षणको वासना और कामनाकी वीणा-विनिन्दित झंकारें प्रभावित नहीं कर सकेंगी ।

आराध्यको आराधकका समर्पण ग्राह्य हो, इसकेलिये आराधनमें आस्थापूर्ण आतुरतासे अनुप्रेरित निवेदन होना चाहिए । आराधककी दृष्टि जब कर्म-फलसे हटी रहेगी, तो कर्ममें उसकी तन्मयता सौगुना वढ़ जायेगी । यही तन्मयता आराधनकी पृष्ठभूमि है । फल निरपेक्ष पुरुषकी कर्म-विपयक तन्मयता तपस्याके स्तरकी होती है । आराधनकी आतुरता जैसी गम्भीर होती है, वैसी ही उसकी भावुकता व्यापक, उदार और सम रहती है । निष्कामता मनका धर्म है । इसकी उत्पत्तिके लिये साधनके रूपमें मनोमय आराधन एक अमोघ प्रयत्न है । आराधनके लिये एकाग्रचित्तकी आवश्यकता हैं । एकचित्त कैसे हो ? भगवान् कहते हैं:— "न किंचदपि चिंतयेत्"—दूसरा कुछ भी चिन्तन न करे ।

आराधनकी निष्ठासे आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीनोंप्रकारके विघ्नोंका सर्वथा उपशमन हो सकता है । संसारी अपने जीर्ण शरीरके परित्यागके वाद भी अपनी आराधनाके संचित धनके वलसे अमरताकी ख्याति प्राप्त कर सकता है । संसार-समुद्रको तैरनेके लिये आराध्यको पहचानना, सच्चा आराधक वनना और आराधन-व्रत धारण करना उचित मार्ग है ।

—(:)०(:)—

संकल्प

गगनचुम्बी अभिलाषाओंमें विभ्रांत मांधाता स्वर्गके पारिजात वनमें पहुँचे । वहाँ कल्पवृक्षके तले जातेही उनकी कामनाएँ चंचल हो उठीं... यदि यहाँ मेरा विलास-भवन होता ।

तत्कालही वहाँ एक सर्व सुख पूरित शयनागार निर्मित हो गया ।

कामना-तरंग और आगे बढ़ी—यदि यहाँ विलासकी सामग्रियाँ होतीं ।

निमिष मात्रमें यह भी सुलभ हो गया ।

फिर हिलोर उठी—कहीं इन्द्रको पता चल गया और मुझे स्वर्गसे निकाल दिया तो ।

दूसरे ही क्षण मांधाता धरतीपर पड़े थे ।

गुरुने कहा—'वत्स' यह जीव ही मांधाता है और यह जगत ही कल्पवृक्ष । यहाँ जो जैसा संकल्प करता है, वैसी ही सिद्धि पाता है ।

हंसबोधसे

वृन्दावनके परम यशस्वी संत, स्वामी हरिदासजीके जीवनकी झाँकी

"बिहारीजी सृष्टिके नियामक तो हैं ही, साक्षात् 'रस' हैं। 'रस' के रूपमें ही स्वामी हरिदासजीने 'बिहारी' जी का सान्निद्धय प्राप्त किया था। उनका 'रस' लोकोत्तर 'रस' था। वह ऐसा 'रस' था, जिसमें जगत्‌के संपूर्ण रस डूबे हुए थे, या यों कहिये जिसके समक्ष संसारके सम्पूर्ण 'रस' तुच्छ ज्ञात होते हैं।'

रस-सिद्ध, अमर संत—स्वामी हरिदासजी

श्रीअमियचरण

वृन्दावनके मध्यमें एक वन है, निधुवन ! बड़ी-बड़ी सघन लताएँ और कुंज ! देखने से ही लगता है, कभी यह वन और भी अधिक सघन रहा होगा, अपने अधिक वास्तविक रूपमें रहा होगा। आजभी वनमें झुण्डकेझुण्ड विशालकाय वन्दर इधरसेउधर उछलते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। पर निधुवनकी सबसे अधिक आकर्षणीय और दिव्य वस्तु जो है, वह है एक समाधि। कुछ वर्षों पूर्व तो समाधि खुले हुए मैदानमें थी, पर अब उसके चारों ओर भव्य मन्दिर बन गया है। समाधिके पास ही स्मृति-चिन्हके रूपमें कुछ वस्तुएँ रखी हुई हैं। ये वस्तुएँ उन महापुरुषकी हैं, जो उस समाधिमें चिरनिद्रामें सोरहे हैं। झुण्डकेझुण्ड यात्री प्रतिदिन उस समाधिका दर्शन करते हैं और अनन्त निद्राकी गोदमें प्रसुप्त उन महान् पुरुषके चरणोंमें अपनी श्रद्धाके पुष्प बिखेरते हैं।

यह समाधि रसिक सन्त-शिरोमणि स्वामी हरिदासजीकी है। स्वामी हरिदासजीका आविर्भाव अकबरके शासनकालमें हुआ था। स्वामी हरिदास श्रीकृष्ण और राधाके युगुल स्वरूपके अनन्य भक्त थे। उनकी भक्तिमें माधुर्यभावकी प्रधानता थी। भक्तिमें सरस भावों की स्थापना करनेमें वे अप्रतिम थे। उनके इष्टदेव 'बिहारी' जी थे। वे 'बिहारी' जी, जो अपनी विहार-लीलाओंके ही कारण 'बिहारी'जीके नामसे विख्यात हैं। वृन्दावनमें आज भी उनका मन्दिर सबसे अधिक चमत्कारिक समझा जाता है। प्रत्येक पर्व और उत्सवपर, आज भी जितनी भीड़ बिहारीजीके मन्दिरमें देखनेको मिलती है, उतनी वृन्दावनके किसी अन्य मन्दिरमें नहीं दिखाई पड़ती। 'बिहारी' जी का श्रृङ्गार भी बड़ा 'रसमय' और अलौकिक होता है। देखते ही चित्तमें रसका स्रोत-सा उमड़ उठता है। जब 'बिहारी' जी की प्रतिमा में इतनी 'रसमयता' और 'तन्मयता' है, तो उन 'बिहारी' जीकी 'रसमयता' और 'मधुरता' का कोई क्या चित्रण कर सकता है, जिसके चरणोंपर स्वामी हरिदासजी मुग्ध थे। स्वामी

हरिदासजीके सम्वन्धमें कहा जाता है कि वे श्रीकृष्ण और राधाकी प्रेम-लीलाओंको देखनेमें प्रायः तन्मय रहा करते थे। वे प्रति क्षण राधा-कृष्णकी अनित्य, और रसमय लीलाओंका अमृत रस पान किया करते थे। कभी-कभी तो वे इतने 'रसमय' हो उठते थे, कि उनसे शरीर और जगत्का वाह्य अंचल भी छूट जाता था।

स्वामी हरिदासजीकी आराधनामें सखी भावकी प्रधानता थी। उन्हें ललिता सखीका अवतार माना जाता था। उन्होंने इसी रूपमें 'राधा-कृष्ण' के माधुर्य रूप-पयोधिमें डूवकर अनुपम भाव-रस सँजोए हैं। वे स्वयं मधुर रस-सिद्ध भावोंमें डूवकर पद रचना करते थे और स्वयं ही उन पदोंको सङ्गीतके रूपमें प्रगट भी करते थे। वे सङ्गीत कलाके आचार्य थे। तत्कालीन सुप्रसिद्ध संगीतकार तानसेन, जो अकवरके दरवारमें रहता था, उनका शिष्य था। स्वामी हरिदास तानसेन, और अकवरको लेकर एक कहानी प्रसिद्ध है, जिससे स्वामी हरिदास की सङ्गीत कला-निपुणता पर प्रकाश पड़ता है। एकवार अकवरने तानसेनसे प्रश्न किया, तानसेन क्या संसारमें ऐसा भी कोई व्यक्ति है, जो संगीत विद्यामें तुमसे अधिक पटु है। तानसेनने उत्तर दिया, 'हाँ हैं, और वे स्वयं उसके गुरु हैं, स्वामी हरिदास, जो वृन्दावनमें निवास करते हैं।' अकवरने इच्छा प्रकटकी कि तानसेन स्वामी हरिदासको शाही दरवारमें ले आए और उनका मधुर संगीत सुननेका उसे सौभाग्य प्रदान करे। पर तानसेनने ऐसा करनेसे अस्वीकार कर दिया। आखिर अकवर स्वयं वेष वदलकर तानसेनके साथ वृन्दावन, स्वामी हरिदासजीकी कुटी पर पहुँचा। तानसेनने वहाँ पहुँचकर, स्वामी हरिदासजीके सम्मुख एक राग प्रस्तुत किया। पर उसने जान-वूझकर रागको प्रस्तुत करनेमें भूल भी कर दी। स्वामी हरिदासजीने उसकी भूलके परिमार्जनके उद्देश्यसे 'रागको वास्तविक रूपमें' प्रस्तुत किया। अकवर स्वामी हरिदासजीके 'अमृत-राग' को सुनकर आनन्द-विभोर हो उठा। उसने वस्तुतः आज तक इतने मधुर कण्ठसे निकला हुआ ऐसा मधुर राग कभी नहीं सुना था। उसने तानसेनसे प्रश्न किया, 'तानसेन, क्या तुम अपने कण्ठमें ऐसा माधुर्य नहीं ला सकते?' तानसेनने उत्तर दिया, 'श्रीमन् मेरे कण्ठमें ऐसा माधुर्य कभी नहीं आ सकता। क्योंकि मैं उन मनुष्योंको प्रसन्न करनेके लिए अपना संगीत प्रस्तुत करता हूँ, जो कामनाओंके 'क्रीत-दास' होते हैं। उधर स्वामी हरिदास उसकी सेवाके लिए अपना कण्ठ-कोष खोलते हैं, जो कामनाओंका नेता और सृष्टिका नियायक है।'

अकवर स्वामी हरिदासजीके मधुर संगीत-स्वरों पर विमुग्ध हो उठा। उसने इच्छा प्रकटकी कि स्वामीजी उसकी कोई सेवा स्वीकार करें। स्वामीजी मुसुकुरा उठे। उन्होंने यमुनाजीके एक खण्डित घाटकी ओर संकेत करके कहा, यदि उसकी इच्छाही है, तो वह उस घाटका पुनर्निर्माण करा दे। अकबर जव उस टूटे हुए घाटपर उपस्थित हुआ तो यह देखकर विस्मयान्वित हो उठा, कि टूटे हुए घाटमें लक्ष-लक्ष हीरे, नीलम, पुखराज और मणियाँ जगमगा रही हैं। अकवरको अपनी अज्ञानता पर मन ही मन बड़ा पाश्चाताप हुआ। उसने स्वामी हरिदासजीके चरणों पर गिरकर क्षमा-याचनाकी। स्वामी हरिदासजीने उसे आदेश देते हुए कहा, वह अब कभी उनके पास न आये। वह सेवाके लिए वृन्दावनके बन्दरोंके लिए अन्न भेजता रहे और प्रयत्न करे कि कोई भी मनुष्य वृन्दावनकी लताओं और वृक्षोंको हानि

न पहुँचा सके। अकवर जवतक जीवित रहा, उसने वड़ी लगन और निष्ठाके साथ स्वामीजी के दोनों आदेशोंका पालन किया।

स्वामी हरिदासजी निधुवनमें कुटी वनाकर रहते थे। उनके कुटी-द्वार पर दिन रात वड़े-वड़े राजा-महाराजाओं दर्शनार्थियों और साधु-सन्तोंकी सदैव भीड़ लगी रहती थी। देशके कोने-कोनेसे लोग उनके पास पहुँचते थे और उनके चरणोंका दर्शन करके अधिक कृत-कृत्य होते थे। निधुवनका आज जो रूप है, स्वामी हरिदासजीके जीवन-कालमें सर्वथा उससे भिन्न प्रकारका था। उन दिनों चारों ओर कुञ्ज-लतायें और सघन वृक्ष थे। हो सकता है, उन दिनों निधुवनके पाससे यमुनाकी कोई धारा भी प्रवाहित होती रही हो। क्योंकि 'निधुवन' में आज भी यमुनाजीकी 'रेत' मिलती है। स्वामी हरिदासजी यमुनाके सलिल प्रवाहोंसे गुञ्जित लताओं और कुञ्जोंकीही गोदमें सदैव निवास किया करते थे। वे उन्हीं कुञ्जोंकी गोदमें वैठ कर राधा-कृष्णकी रसमयी लीलाओंका अमृत-पान किया करते थे। उन्होंने अपने सखी-भावकी अनन्यताके कारण राधा-कृष्णकी समीपता प्राप्त करली थी। वे श्रीराधा-कृष्णका ध्यान करते ही समाधिस्थ हो जाते थे। अष्टछापके महात्मा गोविन्ददासजीने स्वामी हरिदासजीकी मधुर भक्ति प्रगाढ़ताकी प्रशंसा इन शब्दोंमें की है—"जिस मार्ग पर ध्यान-समाधि लगाने वाले वड़े-वड़े मुनि भी अपनेको असमर्थ पाते हैं, जिसके भेदोंका पता वेदोंको भी नहीं मिलता, उस मार्गका पता स्वामी हरिदासजीको प्राप्त हो गया था। स्वामी हरिदासजीने रस रीति पंथका आविष्कार करके भक्तिको सदाके लिए रससे अभिषिक्त कर दिया।"

स्वामी हरिदासजीके संवंधमें कई चमत्कारिक घटनाएँ भी मिलती हैं। उन घटनाओं से जहाँ श्रीराधा-कृष्णकी अलौकिकताके चित्र वनते हैं, वहाँ स्वामी हरिदासजीकी भक्ति-प्रगाढ़ताके चित्र भी सामने प्रस्तुत होते हैं। एकवार जव वसंत ऋतु का वैभव डाल-डाल पर वरस रहा था, स्वामी हरिदासजी रमनरेतीमें ध्यानस्थ वैठे हुए श्रीराधा-कृष्ण, और ललिता, विशाखा आदि सखियोंका होलि-क्रीडोत्सव अपने हृदयके रंगमंच पर वड़ी तन्मयताके साथ देख रहे थे। श्रीराधा-कृष्ण पीले वसन धारण किए हुए, स्वर्ण-पिचकारियों के द्वारा एक-दूसरे पर रंग की वर्षा कर रहे थे। ललिता-विशाखा प्रभृति सखियाँभी, श्रीराधाजीकी ओर से श्रीकृष्ण को रंग से सरावोर करनेमें कुछ वाकी नहीं उठा रहीं थीं। श्रीकृष्ण कभी श्रीराधाको पकड़ लेते और कभी विशाखा, तथा ललिताको पकड़ कर उसके मुखको गुलालसे लाल कर देते। सबके वस्त्र लाल हो रहे थे, और मुख तथा शरीर भी। नीचेसे लेकर ऊपर तक गुलाल ही गुलाल दृष्टिगोचर हो रहा था। स्वामी हरिदास उसी गुलाल-सागर में डूवे हुए अलौकिक आनन्द-रसका पान कर रहे थे। उनकी सम्पूर्ण वाह्य चेतना सिमटकर अन्तर्मुखी हो उठी थी। हठात् किसी भक्तने उनके हाथ पर इत्र की शीशी रख दी। वस फिर क्या ? ध्यानस्थ स्वामी हरिदासजीने सारा का सारा इत्र उँडेल कर गिरा दिया, और श्रीराधाजी के साथ होली खेलते हुए विहारीजीको होली खेलने के लिए ललकारा। भला भक्त-प्रिय विहारीजी इस सुअवसर को कैसे छोड़ सकते थे ? वे श्रीराधाजीको छोड़कर स्वामी हरिदासजीकी ओर लपक पड़े, और फिर तो इत्र ऐसा वरसाया, कि स्वामी हरिदासजी का सारा शरीर सौरभमें सन गया था। पर इत्र देने वाले भक्तको वड़ा दुःख हुआ। उसने यही समझा कि स्वामी हरिदासजीने सारा

का सारा इत्र धरती पर उँडेल कर व्यर्थ ही नष्ट कर दिया। स्वामी हरिदासजी जब बाह्य-ज्ञान में आए, तो उन्हें उक्त भक्तके मनके दुःखका पता चला। उन्होंने उसे आदेश दिया, कि वह इसी समय विहारीजीके मन्दिरमें जाकर उनका दर्शन करे। उक्त भक्त जब विहारीजीके मन्दिर में गया, तो उसके आश्चर्यकी सीमा न रही। सारा मन्दिर इत्रके सौरभमें सना हुआ सा जान पड़ रहा था। भक्तके आनन्द की सीमा न रही। उसके प्राण यह सोचकर खिल उठे, कि 'विहारीलालजीने उसके इत्रको स्वीकार कर लिया है। वह पुनः लौटकर स्वामी हरि-दासजीके पास गया, और अपनी संपूर्ण आस्थाके साथ उनके चरण-कमलों पर लोट पड़ा।

एक दूसरी बार स्वामी हरिदासजी यमुनाजी के पवित्र तट पर समासीन होकर हरि चिंतनमें निमग्न थे। एक भक्त उनके पास पहुँचा, और बड़ी श्रद्धाके साथ उन्हें एक 'पारस' प्रदान किया। स्वामी हरिदासजी भला 'पारस' लेकर क्या करते? उन्होंने भक्तको आदेश दिया, कि वह उस 'पारस'को यमुनाजी में फेंक दे। भक्तने उनकी आज्ञाका पालन तो कर दिया, परसाथ ही 'पारस' के लिए उसके मनमें बड़ी वेदना भी हुई। अन्तर्द्रष्टा स्वामी हरि-दासजी से 'भक्त' के मन का दुःख छिपा न रह सका। वे उठे और उसका हाथ पकड़कर सघन वन की ओर चल पड़े। सघन वनमें एक स्थानपर स्थित होकर उन्होंने उँगुली से एक ओर संकेत किया। भक्त ने जब उस ओर देखा, तो उसके विस्मयकी सीमा न रही। एक को कौन कहे, वहाँ तो अगणित पारसोंका ढेर लगा हुआ था। उसने प्रेम से ललक कर हरि-दासजीके पैर पकड़ लिए। हरिदासजीने उसे स्नेहके साथ उठाया और अपना शिष्य बना लिया। स्वामी हरिदासजी की अनुकम्पा से उसके प्राणोंमें श्रीकृष्णकी भक्ति जाग उठी, और वह धन्य बन गया।

स्वामी हरिदासजीके जीवनकी एक और चमत्कारिक घटनाका उल्लेख मिलता है। यह घटना उस समयकी है, जब महाप्रभु चैतन्यदेव उनकी कुटिया पर पधारे थे। स्वामी हरि-दासजी उन दिनों 'निधुवन' में निवास करते थे। जब महाप्रभु चैतन्यदेव उनसे मिलनेके लिए पहुँचे, और दोनों भक्त एक-दूसरेके गले से मिले तो ऐसा लगा, मानो 'निधुवन'में स्वर्ग की संपदा ही बिखर पड़ी हो। स्वामी हरिदासजी महाप्रभु चैतन्यदेवके साथ भक्तिकी तरंगोंमें डुबकियाँ लगाही रहे थे कि एक और भगवान्‌के अनन्य भक्त आ पहुँचे। उनका नाम श्रीरघु-नाथदासजी था, और वे 'राधाकुण्ड' पर निवास करते थे। उनकी ध्यान-लीलामें श्री राधाजीके शृङ्गारकी पुष्प-वेणी खो गई थी, और वे उसीकी खोजमें विकल थे। वे उसी वेणीकी खोज करते-करते स्वामी हरिदासजीकी कुटिया पर भी उपस्थित हुए थे। स्वामी हरिदासजी उन्हें देखते ही उनकी मनोव्यथा के मर्मको समझ गए। वे महाप्रभु चैतन्यदेवको छोड़कर, रघुनाथ-दासजीको लेकर एक अश्वत्थ वृक्षके नीचे पहुँचे। अश्वत्थ वृक्षके नीचे पहुँचते ही रघुनाथदास जीकी विकलता दूर हो गई। ऐसा लगा, मानों उन्हें उनका इष्ट प्राप्त हो गया हो।

स्वामी हरिदासजी का जन्म सं० १५४७ वि० में वृन्दावन से कुछ दूर राजपुर नामक गाँवमें हुआ था। उनके पिता का नाम गङ्गाधर था, जो एक कुलीन और प्रतिष्ठित ब्राह्मण थे। उनकी माताका नाम चित्रादेवी बताया जाता है। कुछ लोग स्वामी हरिदासजीके दीक्षा-गुरु आशुधीरको ही उनका पिता मानते हैं। जो हो, स्वामी हरिदासजीका मन बाल्यावथामें ही

भगवान्के चरणों में अनुरक्त हो उठा था। वे प्राय: एकान्तमें बैठकर श्रीकृष्ण भगवान्का चिंतन किया करते थे। वे ज्यों-ज्यों वयकी सीढ़ियोंको पार करने लगे, त्यों-त्यों उनकी भक्ति लताभी पुष्पित होने लगी। शनैः शनैः वे भगवान्की रसमय लीलाओंका ध्यान करने लगे। जब देखो, तब वे यमुनाजीके तट पर, या किसी कुंज या उपवन में बैठकर भगवान्की लीलाओं में मग्न दिखाई पड़ते थे। उनकी भक्ति और उनके वैराग्यको देखकर उनके माता-पिता बड़े चिन्तित हुए। उन्होंने उन्हें संसारमें रमानेके लिए संगीत, काव्य कला, तथा अन्यान्य विषयोंकी शिक्षाएँ दिलाईं, पर फिर भी स्वामी हरिदासजीका मन संसारमें न रमा। उन्होंने तो श्रीराधा-कृष्णके चरणोंपर अपनेको निछावर कर दिया था। वृन्दावनका माधुर्य उनके प्राणों को रह-रह कर अपनी ओर आकर्षित कर रहा था। ज्यों-त्यों करके वे पच्चीस वर्षकी अवस्था तक घर में रहे। फिर सब कुछ छोड़कर, वृन्दावन चले गऐ, और निधुवनमें कुटी बनाकर रहने लगे।

विहारीजी स्वामी हरिदासजीके सर्वस्व थे। उनके विहारीजी सृष्टिके नियामक तो हैं हीं, साक्षात् रस हैं रसके रूपमें ही स्वामी हरिदासजीने विहारीजीका सानिद्धय प्राप्त किया था। उनका 'रस' लोकोत्तर रस था। वह ऐसा रस था, जिसमें जगत्के संपूर्ण 'रस' डूबे हुए से थे या यों कहिए जिसके समक्ष संसारके संपूर्ण 'रस' तुच्छसे ज्ञात होते हैं। स्वामी हरिदासजीके उस 'रस' के आधार थे श्रीराधा-कृष्ण। स्वामी हरिदासजी श्रीराधा और कृष्णको लेकर जब अपने अनुपम रस में डूबते थे, तो डूबे ही रहते थे। वे अपने आस-पास भी 'रस' का ऐसा स्रोत प्रवाहित कर देते थे कि दर्शक, भक्त और प्रेमीगणभी उसी 'रस' में डूब जाते थे। धन्य थे, स्वामी हरिदासजी, जिनके द्वारा प्रवाहित 'रस'का स्रोत आजभी अखण्ड रूपमें बहता चला आ रहा है। कहा जाता है, कि सं० १६६५ में वे समाधिस्थ होगए, पर अपने मधुर और रस-सिक्त पदोंके रूपमें वे युग-युगों तक लोकमें अमर रहेंगे।

मुरली का प्रभाव

षोडश शृङ्गार सज्जिता सुन्दरी निशा
निज अव्यक्त स्वामि सेवा संलग्न थी॥
शीत उष्णता समन्विता ऋतु मनोरमा
थी नीरव निशा शारदीय पूर्णिमा की॥
स्तब्ध वातावरण मध्य बिहँसती वनश्री
कर समाप्त निज कार्य समाज निद्राभिभूत था।
श्वेत परिधान धारिणी छिटकी थी चारुचंन्द्रिका॥
कुमुदिनी कुल प्राण वल्लभ की प्रभा पर मुग्ध था॥
मुरली मधुमयी मनमोहिनी बज उठी कहीं॥
धाई विपिन ओर त्याग उपक्रम अर्ध निशा गता।
प्रेमोन्मादिनी प्रमुदिता प्रमदा रव आश्रिता
रमणी राधा पहुँच प्राणधन समीप हुई प्रतिष्ठिता॥

श्रीसन्तकुमार टंडन 'रसिक'

गीताके जीवनोपयोगी सिद्धान्तोंकी मनोरम व्याख्या

"धर्मयुक्त जो लाभ-प्राप्त हो जाय, उससे अधिक की इच्छा नहीं करनी चाहिये। दूसरोंके अधिकारोंको छल या कपटपूर्वक छीन कर अर्जित की गयी सत्ता दुष्कर्मोंका सृजन करती है। वह अर्जकके लिये भी श्रेयस्कर सिद्ध नहीं होती।"

गीता—धर्मका एक अमरकोष

श्रीकृष्णमुनि प्रभाकर

भारतीय दर्शनशास्त्रोंमें गीताका सर्वोपरि स्थान है। धार्मिकतत्त्वोंकी जितनी युक्तियुक्त और व्यापक व्याख्याका प्रतिपादन सिद्धान्तोंके आधारपर गीतामें किया गया है, उतना एकही स्थानमें अन्यत्र मिलना दुर्लभ है, इसीलिये प्रभाव तथा लोकप्रियताकी दृष्टिसे गीताकी मान्यता विश्वके मनीषियोंने अंगीकारकी है। गीतामें न केवल दर्शनके विभिन्न पहलुओंका विस्तृत विश्लेषण किया गया है, बल्कि व्यावहारिक शास्त्रकी उलझी गुत्थियोंको भी उसमें बड़ी प्रवीणतासे सुलझाया गया है। यही कारण है कि उसकी शिक्षा हमें हर संकटपूर्ण परिस्थितिमें एक सही और सुलझे हुये प्रशस्त मार्गकी ओर प्रवृत्त करनेमें सर्वसमर्थ सिद्ध होती है। गीताकी महत्ताका प्रतिपादन करते हुये गांधीजीने एक बार कहा था—"हमें विश्वास रखना चाहिये कि गीताकी गोदमें सिर रखकर हम अपनी सारी धार्मिक और व्यावहारिक ग्रन्थियाँ सुलझालेंगे और सभी दुरूह स्थितियोंसे सहीसलामत पार हो जायेंगे। ऐसी एक भी उलझन नहीं, जिसे गीता न सुलझा सकती हो। तत्त्व-ज्ञानके लिये सबने उसे सर्वोत्तम ग्रन्थ माना है; क्योंकि निराशाके समय इस ग्रन्थने सबकी अमूल्य सहायता की है। मैं तो अपनी सारी कठिनाइयोंमें गीताके पास दौड़ता हूँ और भरपूर आश्वासन पाता हूँ।"

गीताके सम्बन्धमें कुछ यही बात विनोबाजीने इन शब्दोंमें व्यक्त की है—"गीता धर्म-ज्ञानका एक अमरकोष है और हिन्दू धर्मका एक छोटा ही, लेकिन मुख्य ग्रन्थ है। गीता का जन्म स्व-धर्ममें बन्धक जो मोह है, उसके निवारणार्थ हुआ है। वह मोह, वह ममत्व, वह आसक्ति दूर करना ही गीताका मुख्य कार्य है। जीवन-विकासके लिये आवश्यक प्रायः प्रत्येक विचार गीतामें व्यक्त है।"

लोकमान्य तिलक तो गीताको 'कर्मयोग-शास्त्र' ही मानते थे। उनका कथन था कि—"प्रवृत्तिपर कर्त्तव्यका उपदेश गीतामें वर्णित है। कर्त्तव्य क्या है और उसे हमें क्यों

करना चाहिये—इसीकी युक्तियुक्त व्याख्या करना गीताकारका लक्ष्य था। अकर्मण्यताकी शिक्षा देना गीता का उद्देश्य नहीं।"

अर्जुनको स्वजनासक्तिके मोहसे विरहित करने के लियेही भगवान् श्रीकृष्णने उसके प्रति गीताका निरूपण किया था। बन्धु-बान्धवोंको सम्मुख देखकर अपने कर्त्तव्य-कर्मसे अर्जुन विमुख होना चाहता था, लेकिन श्रीकृष्णको उसका यह क्लीव-निश्चय अभीष्ट नहीं था। उन्होंने उसे युद्ध करनेका उपदेश देते हुये कर्मकुशलताके चतुराई रूपी योगका रहस्य समझाया और कहा—"जो कर्म स्वधर्मानुसार नियत किये गये हैं, उनका परित्याग करना किसीको भी उचित नहीं; क्योंकि मोहवश किया गया त्याग तामस त्यागके अन्तर्गत आता है। समत्व बुद्धिसे निष्पन्न किये गये कर्म-द्वारा पाप अथवा पुण्यके बन्धन जीवात्माको नहीं बाँधते। सुख-दुःख, लाभ-हानि और जय-पराजयको समान मानकर कर्त्तव्यको पूर्ण करनेसे भी पापकी काली माया जीवात्माको नहीं ग्रस सकती। कर्म करनेका जीवको अधिकार है, लेकिन कर्मफलकी आशा उसे नहीं करनी चाहिये।"

इस प्रकार गीताके वक्ताने अनासक्त होकर निष्काम बुद्धिसे फलाफलकी चिन्ता किये बिना कर्म करते रहने का निरूपण किया। कर्ममय जीवनको धारण करनेवालाही उन्नतिके पथकी ओर अग्रसर हो सकता है। ऐसा जीवन किस कामका, जो अकर्मण्य हो? संकट रूपी कर्मकी अग्निमें जबतक जीवनका कंचन तपाया नहीं जाता, तब तक उसमें कुन्दनकी चमक निखार नहीं आ सकती। गीताकी शिक्षा आज भी हमें ऐसी ही चमक देनेकी क्षमता रखती है। लेकिन आवश्यकता इस बातकी है कि हम उसमें अपने जीवनके कंचनको तपानेका साहस पूर्ण उद्यम कर सकें।

मोक्षशास्त्रके साथ गीतामें जीवनशास्त्रकी व्याख्या भी व्यापक मानदंडोंके आधार पर की गयी है। दूसरे शब्दोंमें हम यह भी कह सकते हैं कि पारलौकिक शिक्षाओंके साथ गीता हमें इहलौकिक अभ्युन्नतिके मार्गमें भी ऐसी व्यावहारिक जानकारी दिला देती है, जिसके आधार पर हम ज्ञानपूर्वक कर्म निष्पन्न करते हुये अपने जीवनको मर्यादित करके वास्तविक अर्थोंमें दिव्यानन्द प्राप्त कर सकते हैं। जीवन-संग्राममें ज्ञान और कर्म रूपी शस्त्रोंको धारण करके यदि डटकर दुर्वृत्तियोंके शत्रुसे युद्ध किया जाय, तो कोई कारण नहीं कि संकल्पोंकी पूर्त्ति न हो और विजयश्री हमारा वरण न करे। कर्त्तव्य-विमुख होकर जीवन-संग्राममें स्थिर नहीं रहा जा सकता और न ही ऐसा पुरुष श्रीसम्पदाको प्राप्त करनेका वास्तविक अधिकारी माना जा सकता है।

जीवनके व्यावहारिक क्षेत्रमें संकटों और कष्टपूर्ण दुरवस्थाओंकी उत्पत्तिका मूलकारण सृष्टि-मर्यादाका उल्लंघन ही होता है। यदि व्यवस्थानुसार कर्म-रीतिको सुचारु ढंगसे सम्पन्न किया जाता रहे, तो आपदाओंकी सृष्टि नहीं हो पाती। सुखोपभोगों में मदान्ध होकर जीवन-शास्त्रकी सीमाओंका अतिक्रमण करना, स्वयं को जानबूझकर पतनके गर्तमें ढकेलनेके समान है। आजका मनुष्य इन्हीं दुराग्रहपूर्ण परिस्थितियोंके कारण अपने स्वत्वका हनन करने पर तुला है, जो किसी भी दशामें मंगलप्रद नहीं।

जो कुछ सहज प्राप्त हो जाये, उसी पर सन्तोष कर लेना और अपने पुरुषार्थ द्वारा सिद्धिको प्राप्त करनेकी चेष्टा न करना—यह एक ऐसी भ्रान्तिमूलक धारणा है, जो मनुष्य

की कर्मशक्तिको कुन्द बना डालती है। इसका आश्रय ग्रहण करनेवाले जीवनमें सफलता नहीं प्राप्त कर सकते और उनके जीवनकी गति भी स्वभावतः अवरुद्ध हो जाती है।

जीवनको सन्तुलित और मर्यादित रखने वालेको गीताकी शिक्षामें विशेष महत्त्व दिया गया है। आवश्यकतासे अधिक किसी भी वस्तु अथवा पदार्थको ग्रहण करना (अथवा संचित करके रखना) श्रेयस्कर नहीं होता। यथायोग्य आहार-विहार और कर्मचेष्टाकरनेवालेको ही दुःखसन्तापोंसे मुक्ति मिल सकती है। धर्मयुक्त जो लाभ प्राप्त हो जाय, उससे अधिककी इच्छा नहीं करनी चाहिये। दूसरोंके अधिकारोंको छल या कपटपूर्वक छीनकर अर्जितकी गयी सत्ता दुष्कर्मोंका सृजन करती है। वह अर्जकके लिये भी श्रेयस्कर सिद्ध नहीं होती। आस्था-विहीन पुरुषोंमें ही ऐसी पतनोन्मुखी प्रवृत्ति जन्म लेती है और ऐसे वृथा आशावाले, वृथा कर्मवाले तथा वृथा ही ज्ञानवाले अज्ञानियोंका वाहुल्य होने पर अराजकताकी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसीलिये धार्मिक मान-मर्यादाओंके प्रति आस्तिक्य-भाव रखना नितान्त आवश्यक है।

भयके सर्वथा अभाव और अन्तःकरणकी स्वच्छताके साथ मन, वाणी और शरीर से किसी प्रकार भी किसीको कष्ट न देना—धर्मके सवसे बड़े सद्गुण माने गये हैं। जो पुरुष शास्त्रकी निधिको त्यागकर स्वेच्छापूर्वक आचरण करते हैं, वह न तो कार्यसिद्धिको ही प्राप्त कर सकते हैं और न ही परमगतिके सुखको ही। दैवीसम्पदाका विवेचन करते हुये गीताकारने कहा है—'यथार्थ भाषण करना, अपना अपकार करनेवाले पर भी क्रोधित न होना, समस्त कर्मोंमें कर्तापनके अभिमानका परित्याग करना, चित्तको चंचल रखकर किसी की निन्दादि न करना और सव भूतप्राणियोंमें निर्हेतुक दया रखनी—यही लोकशास्त्रके ऐसे नियम हैं, जिनका अवलम्बन ग्रहण करने पर पुरुष पाखण्ड, घमण्ड, अभिमान, क्रोध, क्रूरता और अज्ञानादि आसुरी स्वभावके दुर्गुणोंसे मुक्त हो सकता है।'

प्रत्येक युगका प्रतिनिधित्व करनेका गीतामें सामर्थ्य है। आजके विषमता युक्त वातावरणमें तो उसकी शिक्षाएँ और भी अधिक महत्त्वपूर्ण वन गयी हैं; क्योंकि आजकी अशान्त और भयानक स्थितियाँ मनुष्यको सतत पतनके गर्तमें ढकेलनेके लिये अग्रसर हैं। मानसिक असन्तुलन, स्वार्थपरायणता और अहंभावको पोषण मिलनेके कारण आज सर्वत्र दुःख और क्लेशका साम्राज्य स्थापित है। आज जबकि चारों ओर नैतिक मर्यादाओं और जीवनयापनके मानदण्डोंके मूल्य सतत गिरते जा रहे हैं, व्यक्ति-व्यक्तिका विश्वास टूट-टूटकर श्रृंखलित होता जा रहा है और त्रुटिपूर्ण धार्मिकताका घिनौना अन्धकार जीवन-विकासकी सीढ़ियाँ वन्द किये हुये है, गीता-जैसा व्यवहार-दर्शनकी युक्तियुक्त व्याख्या प्रस्तुत करनेवाला ग्रन्थ ही व्यक्तिसमाजको चिन्तन और कार्यक्रमकी एक नयी सांस्कृतिक दिशा प्रदान करके समूचे राष्ट्रको एकसूत्रमें पिरोनेका श्लाघनीय कार्य सम्पन्न कर सकता है। पाश्चात्य भौतिकवादी दर्शनसे प्रभावित आजके प्रगमनशील मानवको यदि पतनके विनाशकारी गर्तमें डूबनेसे बचाना है, तो उसे गीता-ज्ञानकी पावन आधारशिला प्रदान करनी ही होगी। प्राचीन और पुरातनके नाम पर जीवन-मर्यादाओंको भी त्याज्य माननेकी प्रवृत्ति आज बढ़ रही है, उसे गीतामृतके पवित्र सन्देशों द्वारा ही मिटाया जा सकता है। ऐसी संकटपूर्ण स्थितिमें गीताकी शिक्षाओंका आश्रय ग्रहण करके हमें अपना मार्ग प्रशस्त करना चाहिये और पारस्परिक वैमनस्यकी भावनाओंको त्यागकर अपना और अपने राष्ट्रका उद्धार करना चाहिये।

"ग्वाल व्रजकी एकही विभूतिथे । व्रज कृष्णमय है । 'कृष्णेन बिना को व्रजः' । कृष्णके बिना व्रजकी कल्पनाही असंभव है । अतः कृष्णके बिना ग्वालकी ही क्या परिकल्पना हो सकती है ?"

महाकवि ग्वालके श्रीकृष्ण

श्रीभगवानसहाय पचौरी 'भवेश' एम. ए.

भारतीय अवतारवादमें भगवान् श्रीकृष्ण पूर्णावतारके रूपमें विश्वविश्रुत, चर्चित, अर्चित और पूजित हुए हैं । उनमें जितना ऐश्वर्य है उससे कहीं अधिक माधुर्य है । जितने अंशों में वे सृष्टिके आदि मध्य और अवसानके कर्त्ता हैं, उतने ही अंशोंमें मानव जीवनके लोकरंजक लोकत्राता रूपके आदर्श भी हैं । वे पुत्र हैं, सखा हैं, मित्र हैं, शत्रु हैं, बालक हैं, युवा हैं, प्रौढ़ हैं । योद्धा हैं, वीर हैं, राजनीतिज्ञ हैं, दार्शनिक हैं, रणसंचालक हैं, विजेता हैं, कंस, चाणूर, जरासंध, शिशुपाल जैसे दुष्टोंके मर्दनकर्त्ता हैं । वे विश्वके अयुत-अयुत भक्तोंके भगवान् हैं । वे क्या नहीं हैं । नन्द, यशोदा, राधादिकसे पूछो कि वे क्या हैं ! व्रजके कुंज निकुंजों, लतावेली, कुंड सरोवर, यमुनासे पूछो ! लोकजीवनमें इतनी व्यापकता अन्य किस अवतारकी है ? यही कारण है कि श्रीकृष्ण ५००० वर्षोंसे भारतीय जीवन, संस्कृति और साहित्यके अविनाशी प्रतिपाद्य रहे हैं । महाभारतकारसे लेकर अर्वाचीन युगके साहित्यकारों, कवियों, नाटककारों, मनीषियों, महात्माओं, विचारकों ने इस सनातन प्रतिपाद्यको लेकर प्रचुर साहित्यका सृजन किया है । संस्कृत वाङ्मयसे लेकर समस्त भारतीय भाषाएं श्रीकृष्णके नाम संकीर्तनसे निनादित हुई हैं । भारतीय जीवनसे यदि श्रीकृष्णको निकाल दिया जाय तो कुछ शेष नहीं रहता । भाषा-कवियोंकी लेखनी श्रीकृष्ण-गुणगान न करती, यह कब संभव था ? सूर सहित अष्टछापके गायक कवियोंने तो श्रीकृष्ण-चरित्रके माधुर्य रसकी सुरसरिता बहाई ही, चंडीदास, जयदेव, विद्यापति प्रभृति वैष्णवोंने पीयूष पान किया ही, हम देखते हैं मध्ययुगीन शृङ्गार-प्रधान कवियोंने भी श्रीकृष्णके मधुर स्वरूपके विविध चित्रांकन किए । इन कवियोंने नाना छन्दोंमें कृष्ण-गान किया । इन्हीं वाणीसिद्ध कवियोंमें महाकवि ग्वाल एक हैं, जिन्होंने श्रीकृष्ण और उनके इतर परिवारोंके चरित्रको अपना काव्य विषय बनाया । ग्वालतो व्रजकी ही एक विभूति थे । व्रज कृष्णमय है । 'कृष्णेन विना को व्रजः ।' कृष्णके विना व्रजकी कल्पना ही असंभव है । अतः कृष्णके विना ग्वालकी ही क्या परिकल्पना हो सकती है ?

महाकवि ग्वालके भक्ति-रसके काव्य ग्रन्थोंमें यों यमुना लहरी, वंशीबीसा, राधाष्टक, गोपीपच्चीसी, कुब्जाष्टक आदि रचनाएं कृष्ण-चरित्रका ही दिव्यांकन करती हैं, परन्तु श्रीकृष्ण

जू कौ नख-शिख' और 'कृष्णाष्टक' ऐसे दो काव्य हैं, जिनमें सर्वांशमें श्रीकृष्णकी अलौकिक महिमाका प्रतिपादन ब्रजीके कोमलकान्त कवित्तोंमें हुआ है। 'श्रीकृष्ण जू कौ नखशिख' की रचना नाभानरेश महाराजा जसवंतसिंहके आश्रयमें हुई थी। यह विशुद्ध भक्तिकी रचना है। इसमें भगवान् श्रीकृष्णके नखशिखकी शोभामें ६६ कवित्त हैं। सब उत्कृष्ट कवित्त हैं। भगवान् के चरण, चरणभूषण, जंघा, नितम्ब, लंक, काछनी, लंकभूषण, नाभि, त्रिवली, रोमराजि, उदर, हृदय, भृगु-लात, वक्षस्थल चिह्न, वनमाल, पाणि, लकुट, बाँसुरी, भुजाएं, कंठ, कंठ-भूषण, पीठ, चोठी, चिबुक, अधर, दशन, रसना, मुखसुवास, हास्य, नासिका, कपोल, कान, कर्णभूषण नेत्र, चितवन, भृकुटि, भाल, खौरि, श्रीमुख, केश, मोरमुकट, गति, पीतपट, सम्पूर्ण रूपका साङ्गोपाङ्ग वर्णन इस रचनाकी विशेषता है। इसमें भगवान्के शृङ्गारका अति मर्यादित वर्णन है। उज्ज्वलनीलमणिकारकी भाँति ग्वालने मर्यादाका निर्वाह अत्यधिक सुचारुता के साथ किया है। नखशिख वर्णन यों शृङ्गारी साहित्यकी अनिवार्य परिपाटी थी। पर इसमें इधर जहाँ भगवान् और उनके परिकरोंके शृङ्गारका वर्णन है, प्राय: कवियोंने सुन्दर काव्यका सृजन किया है। यह भगवत रसिकजनोंके अध्ययनकी वस्तु है।

टोंकके मुसलमान नरेश संभवत: श्रीकृष्णके भक्त थे। उनके आदेश पर ग्वालजीने कृष्णाष्टककी रचनाकी। अवसरानुकूल उर्दू, अरबी, फारसी मिश्रित ब्रजीमें ग्वालने भगवान् कृष्णके उस अलौकिक स्वरूपका चित्रण किया है जो ऐश्वर्यमय तो है ही, माधुर्य भी उसमें कम नहीं है। इस रचनामें केवल ८ कवित हैं। आठों में कृष्णका ऐश्वर्य-रूप चित्रित होता है। कहा जाता है, इस मुसलमान शासकने इस काव्यकी सराहनाकी और ग्वालको पुरस्कृत भी किया।

नवलकिशोरके चरणाम्बुजोंमें अपने मनोयोगको निमग्न करता हुआ कवि कृष्णमय हो गया है :—

> पानिप परम मंजु मुकता सरम खाय
> डूबे सिन्धु अगम अदम गम कोर के।
> तारे तेज वारे ते न कारे निसि तारे परैं
> दिवस डरारे रहैं दुरि मुख मोर के॥
> ग्वाल कवि फबि-फबि छबि जो छपाकरकी,
> दबि-दबि दूबरैं कुमुद जिमि भोरके।
> याते जग पख नख मख मैन पचि सब
> चख लख पख नख नवल किशोरके॥

नंदनंदनके चरण दुख-द्वन्द्व-हर्त्ता अशरण-शरण हैं। पर भगवान्के चरण कितने सुन्दर भी तो हैं :—

> ग्वाल कवि ललित लुनाई कों मलाई जैसी,
> तैसी है न कंज बीच औ गुलाब फंदके।
> नन्द के करन दुख दुँद के हरन घन
> असरन सरन चरन नंद नन्द के॥

वे चरण केवल सामान्य जनताके लिये ही मोदकारी और पूज्य नहीं है। राजामहाराजा भी इनकी कृपाके विना, विना राज और ताजके हो सकते हैं :—

शोभा के जहाज राज लोकन के ताजराज,
ऐसे पद राजैं ब्रजराज महाराज के ।

जिसके भृकुटि-विलास मात्रसे सृष्टि लय हो सकती है, उसके चरणोंकी रजकी क्या महिमा है, इसे कौन गा सकता है।

श्रीकृष्णकी वनमाल कैसी है, मानों शोभाके समुद्रमें से ही निकाली गई है :—

फूले फूल फूल तिन्हें फूल फूल लीन्हें तोर
रंग रंग की सुरंगत निहारी है
सूंत सूंत रेसम रंगीन में रसायन सौं
गहकि गहकि गूंथी गूथनि निवारी है ।।
ग्वाल कवि सौरभ समुद्र तें निकारी मानों
ललित लुनाई कौ भलाई लहरारी है ।
बानिक बिसाल बारौं मोतिन की माल जापै
ऐसी बनमाल नंदलाल उरधारी है ।।

वंशीधरकी वंशीके वशीकरणके संबंधमें क्या पूछना—

कैधौं चर अचर बसीकर-करनवारौ
मंत्र लिखि जंत्र सिद्धि कीयौ तीरथन में ।
कैधौं छहराग और रागिनी सुतीसन के
बास कौ सदन टँग्यौ सात हू स्वरन में ।।
ग्वाल कवि कैधौं सिव सनक समाधन कौ
भेदन करैया सर सोच देखौ मन में ।
कैधौं सुधानद के प्रवाह कौ बहन हारौ
वेणु श्रीबिहारी कौ बजत वृन्दावन में ।।

ग्वालने वंशीमहिमा पर पृथक् रूपमें एक रचना 'वंशी वीसा' नामसे की है, जिसके छन्द एकसे एक सरस और अधिक भावमय हैं। मुरलीके अलौकिक प्रभाव उसमें प्रतिपादित हुए हैं।

लालके लाल लोचनोंकी शोभामें विहार करते हुए कवि तन्मय हो उठा है :—

मीन मृग खंजन खिस्यान भरे मैन बान,
अधिक गिलान भरे कंज कल ताल के ।
राधिका छबीली की छहर छबि छाम भरे
छैलता में छारे भरे भरे छबि जाल के ।।
ग्वाल कवि आन भरे सान भरे स्यान भरे
कछु अलसान भरे भरे मान माल के ।

लाज भरे लाग भरे लोभ भरे सोभ भरे
लाली भरे लाड़ भरे लोचन हैं लाल के ।।

नेत्रोंका इतना सुन्दर चित्रण भला अन्यत्र कहाँ मिलेगा !

अन्तमें कवि मनको सचेत करता है कि मन, सब तज कर भगवान् श्रीकृष्णका भजन क्यों नहीं करता—

ग्वालकवि जाके गुन गन कौ कहै सो कौन,
मौन व्रतधारी व्यास हारी मति सेस की ।
त्यागि जग विष मन सिख सिख सीख मेरी
लिख दिख नख सिख छवि रिषकेस की ।।

कृष्णाष्टकमें श्रीकृष्ण भगवान्के ऐश्वर स्वरूपका प्राधान्य और माधुर्य रूपका समन्वय है । श्रीकृष्ण भगवान् हैं, संपूर्ण ब्रह्माण्ड उनमें जकड़ा हुआ है । पर वही भगवान् माँ की रस्सीमें अपने को बँधा लेते हैं । जो भगवान् सूर्यादि का संचालन करते हैं उन्हींको गोपियाँ चलाती हैं :—

जिसके खयाल में खलक गिरफ्तार हुआ
हुआ गिरफ्तार वही माँ के दस्त फन्द है ।
ग्वाल कवि जिसने चलाया आफताव वही
गोपियाँ सिखाती रफ्तार हरचन्द है ।।

जो कल्पनामें नहीं आ सकता, वही यशोदाकी गोदमें विराजमान है ।

ग्वाल कवि जो कि नहीं आता तसव्वुर में
वही जसुदा की हुआ गोद पेशबन्द है ।

कालीनाग नाथना, पूतनाका दूधपीना, कंसका वध करना तो मानों उन चतुर्भुज श्रीकृष्ण भगवान्के कुछ मन पसंद खेल थे; क्योंकि—

जिसके तँई खौफ क्या था काली नाग नाथने में
वह तो खिलौना था खिलाया जी पसन्द है ।
ग्वाल कवि जिसे पूतना का दूध पीना क्या था
जहरी कमाल सो कि जिसका हुक्म मन्द है ।।

× × ×

चाहै तो पलक में खतम कर देवै जहाँ
चाहे तो बनावै लाख करै कौन चंद है ।।
ग्वालकवि जिससे दुस्मनाई क्या करेगा कंस
अज्ल जिसके हाजिर हमेशा हुक्म मन्द है ।
चार सर वाले के करिन्दे हैं जिसी के वही
बन्दे पर महरबान नजर बुलन्द है ।।

कल्याणके चित्र निर्मित करने वाले स्फुट उन्नत विचार

जीवन-रस चखना यदि चाहो,
चढ़ो खजूरके पेड़पर।
बहुत दूर झुरमुटमें रस है,
'बलिदानों'की मेड़पर।

दूर्वादल

संकलित

श्रीदेवदत्त शास्त्री हिन्दी और संस्कृतके विद्वान हैं। वे चिंतक हैं, विचारक हैं; ज्ञान, भक्ति, धर्म, और संस्कृतिके प्रति उनकी दृढ़ आस्था है। उन्होंने जीवनकी ऊँची-नीची पगडंडियोंपर चलकर बड़े पौरुषके साथ ईश्वरताके स्वरोंको जीवनकी वीणापर साधनेका प्रयत्न किया है। उनके पास स्वानुभूतिोंका कोष है। उन्होंने 'आत्मानं सततं विद्धि' के रूपमें एक रत्न निकालकर उपस्थित किया है। आपभी उस विचाररत्नको देखें, अवश्य वह आपके कामका होगा—

अपने आपको निरन्तर जानने, पहचानने और समझनेकी चेष्टा करनी चाहिए। ऐसा भगवान् श्रीकृष्णने गीता में कहा है। मेरी दृष्टिमें 'आत्मानं सततं विद्धि' यह भगवद्वाक्य सम्पूर्ण गीताज्ञान-मालाका सुमेरु है।

'आत्मानं सततं विद्धि' की व्याख्या मैं वेदान्त, दर्शन, आदि निगूढ़ शास्त्रोंके साक्ष्यमें यहाँ प्रस्तुत नहीं करूँगा, बल्कि स्वानुभूत व्यावहारिक धरातलपर इस संबंधकी एक आश्चर्य-जनक घटना लिखकर पाठकोंको उसपर सोचने, समझनेका अवसर देना चाहता हूँ।

डा० मधुकर मानवीय गुणोंसे सम्पन्न एवं एक शिष्ट व्यक्ति हैं। इस समय वह भारतसरकारकी सेवामें दिल्लीमें हैं। इससे पहले वह इलाहाबादमें अध्ययनके सिलसिलेमें रहते थे। एम० ए० कर चुकनेके पश्चात् वह रिसर्च कर रहेथे, इलाहाबादके विक्रम होटलकी ऊपरी मंजिलके एक कमरेमें रहा करते थे। मधुकरजी स्वभावसे गंभीर, मितभाषी और एकान्तप्रिय हैं, उनके मित्रों और परिचितोंकी संख्या बहुत सीमित है। मेरे बहुत ही अन्तरंग और घनिष्ठ हैं, फिर भी कभी वह न मेरे घर आए और न मैं उनके यहाँ गया।

बात दस ग्यारह वर्ष पुरानी हो चुकी, किन्तु आजभी एकदम नई इसलिए है कि जिस घटनाका उल्लेख करने जा रहा हूँ, उसे इससे पहले न तो मधुकरजीने किसी और को बताई और न मैंने। एक दिन बात ऐसी हुई, मधुकरजी मिले, किन्तु उनके शान्त, प्रशान्त चेहरेमें घबराहटकी रेखाएँ उभरी हुई थीं, पूछनेपर उन्होंने धीरेसे किन्तु आश्चर्यभरे स्वरमें बताया

कि जब मैं चुपचाप कुर्सी पर बैठा रहता हूँ तो ठीक मेरा ही प्रतिरूप सामनेकी कुर्सी पर बैठा हुआ दिखाई पड़ता है। ऐसा दो बार हो चुका है।

बात साधारण नहीं थी, मुझमें भी आश्चर्य और भय उत्पन्न करने वाली थी, किन्तु उस समय मैंने मधुकरजीको मनोविज्ञान, दर्शनका सहारा लेकर भयरहित और आश्वस्त कर दिया था। मेरा यह समाधान कोरा दिखावटी था। मुझे वह स्वयं आश्वस्त, विश्वस्त करनेमें अक्षम रहा, फिर मैं यह कैसे दावाकर सकता हूँ कि चिन्तनशील मधुकरको मैं आश्वस्त कर सका।

बात आई और गई। मधुकरजी और मैं दोनों अपने अपने धन्धेमें फँसकर सब कुछ भूल बैठे। लेकिन एक रात मेरे लिए ऐसी आई, जो मधुकरकी भाँति मुझे भी भयग्रस्त और आश्चर्यचकित बना गई। मेरी आदत रातमें ही लिखने पढ़ने की है। दिनमें गंभीर विषयों का अध्ययन या उनपर लिखना मेरे लिए संभव नहीं। उन दिनों मैं 'उपनिषद्—चिन्तन' पुस्तक लिख रहा था। एक दिन रात १२॥ बजे अचानक 'उलूलव:' शब्द पर लेखनी रुक गई। 'उलूलव:' शब्द पर गंभीर विचार करने लगा, लेखनी रखकर, आँख मूँदकर। पाँच मिनट बाद आँखें खोलीं तो जिस तख्त पर बैठा था, उसीपर ठीक मेरे सामने मेरी ही लेखनी लिए एक और 'मैं' को मैंने बैठे हुए देखा। मैं घबड़ा गया और सहसा उठकर खड़ा हो गया। मेरे खड़े होतेही मेरा दूसरा रूपभी खड़ा होगया और मेरी लेखनी मेरे हाथ सौंपकर वह अन्तर्धान हो गया।

जाड़ेकी रात थी, मैं भयसे पसीनेसे तरबतर हो गया। कुछ देर बाद प्रकृतिस्थ हुआ तो 'उलूलव:' शब्दका तात्पर्य बोध अनायास ही मुझे हो गया और मैं फिर लिखने लगा। विषय-प्रसंग पूराकर चुकनेके बाद लिखना बंदकर मैं लेट गया। अब भयके स्थानपर मुझमें कुतूहल और जिज्ञासा उत्पन्न हुई। अपने प्रतिरूपको लेकर मैं रातभर चिन्तन करता रहा। बड़े आनन्दसे वह रात बीती थी, सवेरे मुझे वास्तविक आत्मसुखकी अनुभूति हुई थी। तबसे निरंतर मेरी आस्था आत्म चिन्तनकी ओर बढ़ रही है। आत्माकी सत्तापर मेरा दृढ़ विश्वास हो गया और आत्म चिन्तन, आत्मसाक्षात्कार, अपने आपको जानो, अपना उद्धार अपने आप करो इत्यादि दार्शनिक सिद्धान्तों, अनुदेशाज्ञाओं पर मैं पूर्ण आस्थावान् बनकर उन पर चिन्तन, मनन किया करता हूँ।

जबसे मैंने इस पथको अपनाया है, तबसे मैंने अनेक जिज्ञासाओंका समाधान स्वयं किया है। मुझे अक्सर यह अनुभूति हुआ करती है कि कोई मुझे बतलारहा है, प्रेरित कर रहा है। किसी उलझनमें फँस जाने पर उससे छुटकारा पानेका मार्ग मुझे कई बार स्वप्नमें प्राप्त हुआ है।

किन्तु एक बात यह भी स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि जबसे मैंने "आत्मानं सततं विद्धि" को अपने चिन्तनका सूत्र स्वीकार किया है, तबसे मुझमें आत्मगरौव, आत्मसम्मानकी भावना उत्तरोत्तर बढ़ती हुई जान पड़ती है, और इस भावनासे मैं अपने व्यावहारिक जीवनमें कई बार हानि भी उठा चुका हूँ, किन्तु जितना गँवा देता हूँ, उससे कहीं अधिक आत्मसुखकी उपलब्धि होती है। 'आत्मानं सततं विद्धि' के चिन्तनसे मनुष्य आत्मवंचनासे रहित हो जाता है—यह मेरा अटल विश्वास और अनुभव है।

श्रद्धेय डा० बल्देव उपाध्याय संस्कृत साहित्यके प्रकांड विद्वान और समीक्षक हैं। धर्म, संस्कृति, दर्शन, और शास्त्रका मंथन उन्होंने बड़ी गम्भीरताके साथ किया है। 'मध्य प्रदेशीय शासन साहित्य परिषद' द्वारा आयोजित उज्जैनके विद्याकेन्द्रमें, उनके द्वारा **श्रीसद्भागवत और श्रीकृष्ण भगवान् पर** स्तुत्य विचार प्रकट हुए हैं। उनके विचारोंसे निश्चय, मार्ग-दर्शन प्राप्त होगा। आप भी देखें, और मार्ग-दर्शन प्राप्त करें—

भगवान् श्रीकृष्ण लौकिक एवं पारलौकिक गुणोंके समन्वयके प्रतीक हैं। उनके जीवन और चारित्रिक विशेषताओंके अनुशीलन तथा विश्लेषणसे कतिपय विद्वान् इस निष्कर्ष पर पँहुचे हैं कि एकाधिक श्रीकृष्णका आविर्भाव हुआ होगा, किन्तु प्राचीन साहित्यके अध्ययनसे यह निर्विवाद रूपसे सिद्ध हो जाता है कि महाभारत और पुराणोंमें वर्णित श्रीकृष्ण एक ही हैं, उनके व्यक्तित्वमें कोई तात्विक विरोध नहीं है। उनका सम्पूर्ण जीवन-चरित्र लौकिक एवं पारलौकिक गुणोंके अद्भुत समन्वयका एक ऐसा अनूठा उदाहरण है, जो अन्यत्र उपलब्ध होना कठिन है। उनमें वहुविध लौकिक एवं पारलौकिक गुणोंके सँगुफनके साथ कर्म, ज्ञान और आनन्दकी परिपूर्णता परिलक्षित होती है।

पुराणोंमें श्रीकृष्णके बाल-चरित्र एवं बाललीलाओंका ही प्रमुख रूपसे आख्यान किया गया है और महाभारतमें उनके प्रौढ़ जीवनकी लीलागाथा गाई है। संभवतः इसी कारण एकाधिक श्रीकृष्णके अविर्भावकी भ्रान्ति वनी हुई है, किन्तु पुराणोंने श्रीकृष्णकी जिन बाल लीलाओं एवं गुणोंका गान किया है, उन्हींका परिपूर्ण विकास महाभारतमें दृष्टिगत होता है।

भगवान् श्रीकृष्ण ब्रह्मके पूर्णावतार थे, अंशावतार नहीं, क्योंकि समष्टिके कल्याणके लिए ही उनका आविर्भाव हुआ था। उनके जीवन चरित्रसे जिन बहुविध कार्यकलापोंके हमें दर्शन होते हैं या उनके एक होते हुए भी जिन अनेक रूपोंके दर्शन देते हैं अथवा जिन विविध कार्य व्यापारोंमें उनका एक ही रूप सर्वत्र दृश्यमान होता है, वह वस्तुतः उनके भगवत रूपको संकेतित करता है। इसीलिए वे अलौकिक हैं। वे वास्तविक रूपमें सच्चिदानन्द थे। उनके जीवनमें हमें कर्म (सत्), चित् (ज्ञान) और आनन्दका समन्वय मिलता है। उनके जीवनने भारतीय जनजीवनको स्थायी रूपसे जितना अधिक प्रभावित किया है, उतना किसी अन्यने नहीं। यही कारण है कि भारतीय साहित्य का, विशेषतः हिन्दी साहित्यके एक महत्व-पूर्ण कालमें केवल श्रीकृष्णके चरित्र और व्यक्तित्वका ही नाना रूपेण आख्यान किया गया है और उसी कालको हिन्दी साहित्यका स्वर्णकाल कहा गया है।

डा० श्रीरामचरण महेन्द्र जी नीति, धर्म, और संस्कृतिके कुशल चित्रकार हैं। उनमें नीति, धर्म, और संस्कृतिके प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा है। वे शिक्षा और लेखनके द्वारा नीति, धर्म और संस्कृतिका आलोक जगा देनेके लिए उत्कंठित-चित्त रहते हैं। उन्होंने **पाश्चात्य देशोंमें फैलते हुए धार्मिक विश्वास** और भारतमें धर्मके प्रति बढ़ती हुई अनास्थाको देखकर अपनी विकलता प्रकटकी है। उनकी विकलतामें एक गंभीर सत्य है। आप भी देखें—

अमेरिकाके सिक्कों पर लिखा रहता है—

"इन गौड वी ट्रस्ट" हम ईश्वरमें विश्वास रखते हैं।

सिक्कोंके ऊपर ईश्वरका का उल्लेख स्पष्ट करता है कि अमेरिकामें सर्वत्र धार्मिक विश्वासोंका सम्मान किया जाता है। वे लोग यह मान कर चलते हैं कि धर्मका सामाजिक और राजनैतिक जीवनमें महत्वपूर्ण स्थान है। धर्म हमें पाप कर्मों, वेईमानी, धूर्तता, ठगी और मिथ्याचारसे बचाता है और आदर्शकी ओर बढ़नेमें सहायता करता है।

वे यह समझते हैं कि यह सम्पूर्ण विश्व, यह समूचा समाज परमात्माका ही रूप है। संसार, समाज और व्यक्तिको परमात्माका प्रत्यक्ष स्वरूप मानकर इसकी सेवा करनी चाहिए।

धर्मका सबसे बड़ा लाभ अनुशासन है। धर्ममें विश्वास करनेवाला व्यक्ति स्वयं ही अनुशासित रहता है और राज्यकी पुलिसकी बहुत सी शक्ति और व्यय सहज ही बच जाता है।

अमेरिकाके सरकारी स्कूलोंमें धार्मिक विश्वासोंका सम्मान है। वहाँके स्कूल कानून द्वारा स्थापित और नियंत्रित हैं; उनका व्यय सरकारी कोषसे चलता है। उनकी नीतिका निर्धारण प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपसे जनता द्वारा निर्वाचित अधिकारी करते हैं। ये स्कूल शासन तथा संचालनकी दृष्टिसे तो सरकारी हैं और सरकारी होनेकी दृष्टिसे इन संस्थाओंको किसी धर्म विशेषसे सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए। लेकिन वे धर्मके जिस रूपको प्रोत्साहन देते हैं, उसमें किसी मत मतान्तर अथवा सम्प्रदाय विशेषका प्रचार नहीं है। उसमें धर्मके मोटे सिद्धान्त जैसे—नैतिकता, ईमानदारी, सचाई, श्रमशीलता, नैतिकता, कर्त्तव्यपालन—आदि को विशेष प्रोत्साहन दिया जाता है। सरकारी स्कूलोंकी नीति सब धार्मिक मतोंका आदर और किसीसे भी पक्षपात न करनेका है।

धर्मके प्रति इतना आदर अमेरिका निवासियोंसे सीखने योग्य सद्गुण है। जब वे अपने राजनैतिक जीवनमें धर्मको इतना आदर देते हैं, तब हम भी क्यों न करें।

अमेरिकाको धर्ममें विश्वास रखने वाले प्रोटेस्टेन्टोंने बसाया था। तबसे अब तक अद्भुत उन्नति और विकास करने पर भी वे अपने धर्मको भूले नहीं हैं।

अमेरिकाके संविधान 'नागरिक अधिकारोंके बिल' में धार्मिक आदर्शोंकी सत्ता स्पष्ट रूपसे स्वीकार की गई है और प्रत्येक व्यक्तिको अपने अपने धार्मिक विश्वासों और आदेशोंके अनुसार ईश्वरकी आराधना करनेकी स्वतन्त्रता दी गई है।

यह सत्य है कि कुछ राज्य धर्मको इतना महत्व नहीं देते हैं किन्तु उसका यह मतलब नहीं है कि वे धर्मके विरोधी हैं, या धर्मको मानते ही नहीं हैं। सच बात तो यह है कि अमेरिकाके सरकारी स्कूल भी, अपने देशकी सरकारकी भाँति, धार्मिक विचारोंकी स्वतन्त्रता के दृढ़ पक्षपाती हैं। अमेरिकन राष्ट्रको बलवान बनानेमें धार्मिक विभिन्नता और सहिष्णुतासे बहुत सहायता मिली है और सरकारी स्कूलोंमें वे दोनों बातें अपने यथार्थ रूपमें दृष्टिगोचर होती हैं।

हम भी इस दिशामें अमेरिकाका अनुसरण कर सकते हैं।

'धर्मसे तटस्थ रहकर जीवन व्यतीत करनेका अर्थ है अधर्मकी ओर बढ़ना और अधर्मही उन सभी दुःखोंका कारण है, जिनसे मनुष्यका मन दिनरात अशान्त रहता है।

"मन बड़ा सक्षम है, बड़ा प्रतापवान् है, और है बड़ा गतिवान् । ऐसा कोई कार्य नहीं, जिसे मन न कर सके, ऐसा कोई स्थान नहीं, जहाँ मनकी पहुँच न हो सके। जगत्‌के साधारणसे साधारण कार्यसे लेकर, आत्म-साक्षात्कार तक मनके द्वारा ही होता है। इसी प्रकार जगत्‌के स्थानों से लेकर परम जगत् तककी पहुँचभी मनके ही आधीन है।"

जीवन रथ-चक्रका चालक—मन

श्रीकेशवकुमार

मनुष्यके जीवनपर जब हम ध्यान देते हैं, तो पता चलता है, कि वह एक ऐसा रथ है, जिसके पहिये दिन-रात घूमते ही रहते हैं। मनुष्यके जन्मसे लेकर मृत्यु तक—उसके जीवन-रथ का चक्र चलता ही रहता है। वह चाहे या न चाहे, पर उसके जीवन-रथके चक्रकी गति निरंतर जारी ही रहती है। कभी उसके रथका चक्र सुन्दर, समतल पगडंडीसे होकर दौड़ता है, तो कभी-ऊँची, नीची, कँकरीली-पथरीली भूमि पर भागता हुआ जीवन-रथके पुर्जे-पुर्जेको हिला देता है। कभी रेगिस्तानमें, रेतके ढेरोंमें जाकर फँस जाता है, तो कभी पंकमें दलदलके बीचमें जाकर धँस जाता है। अद्‌भुत है जीवन-रथका यह चक्र। आइए, देखें, कि मानव-शरीरके भीतर वह कौन महा शक्तिवान्, और रहस्य-पटु खिलाड़ी है, जो जीवन-रथके चक्रों को इस प्रकार चलाकर अपनी कुशलताके साथ ही साथ रहस्यात्मकताको भी प्रकट करता है।

मानव शरीरके उस खिलाड़ीको जाननेके लिए हमें मानव-शरीरका बाहर और भीतर से निरीक्षण करना होगा। शरीरमें बाहर कई अङ्ग हैं—हाथ, पैर, नाक, कान, और मुँह इत्यादि। इन्हीं अङ्गोंको बाह्य इन्द्रियोंके नामसे संबोधित किया जाता है। शरीरके इन बाह्य अङ्गोंसे ही मनुष्य अपना संपूर्ण कार्य करता रहता है। मनुष्य जो कुछ देखता है, नेत्रोंके द्वारा ही देखता है। श्रवण करनेका कार्य कानोंके द्वारा ही पूर्ण होता है। साँस लेने, और गंध-ज्ञानकी क्रिया नासिकाके ही द्वारा होती है। इसी प्रकार भोजन ग्रहण और स्वादानुभवमें मुँह तथा रसनाका ही योग होता है। शब्दोच्चारण और वाणीके प्रस्फुटनमें भी मुँह और रसना ही आधार बनती है। पर जब हम इन अङ्गोंकी परिचालन-क्रिया पर विचार करते हैं, तो लगता है, कि ये स्वयं चालित नहीं होते, वरन् इन्हें भी चलानेवाला-प्रेरणा देनेवाला कोई अन्य है। आइए देखें, कि वह अन्य कौन है ?

इस अन्यको देखने और जाननेके लिए हमें शरीरके भीतर प्रवेश करना होगा। बाहर की भाँति ही शरीरके भीतरभी पाँच इन्द्रियाँ हैं, जिन्हें लोग 'ज्ञानेन्द्रियाँ' कहते हैं। बाह्य

इन्द्रियोंकी भाँति ही ज्ञानेन्द्रियाँभी बड़ी सक्षम हैं। शरीरके जहाज या तरणीका संचालन ज्ञानेन्द्रियोंके ही द्वारा होता है। मनुष्यके जीवनमें सुख-दुख, उत्थान पतन, शोक हर्ष, प्रेम द्वेष, और मिलन तथा वियोगकी जो अगणित कहानियाँ बनती हैं, उनका एक मात्र कारण ज्ञानेन्द्रियाँ हीं होती हैं। पर इन ज्ञानेन्द्रियोंपर जब हम दृष्टि डालते हैं, तो वे भी किसी एक 'शक्ति-पुंज'के ही द्वारा परिचालित और प्रेरित दिखाई पड़ती हैं। फिर क्या वही शक्ति-पुंज वह रहस्यपूर्ण नायक है, जो जीवन-रथके चक्रों को नचानेमें बड़ा पटु है ?

पर यह है कौन ? वह मन है। मनको कौन नहीं जानता। कौन है, जिसके पास 'मन' नहीं होता। चाहे जहाँ जाइए, चाहे जहाँ रहिए, मन साथ-साथ लगा रहता है। कर्मेन्द्रियाँहों, चाहे ज्ञानेन्द्रियाँ—मनसे ही चालित और 'प्रेरित' होती हैं। 'मन' ही उन्हें चलाता है, उनमें ओज भरता है। कर्मेन्द्रियों, और ज्ञानेन्द्रियोंके द्वारा जितने भी कार्य-व्यापार होते हैं, उन सबका एकमात्र आधार 'मन' ही है। 'मन' जैसा कहता है, जैसा आदेश देता है, उसीके अनुसार इन्द्रियाँ चलती हैं—अपना व्यापार करती हैं। 'मन' बड़ा सक्षम है, बड़ा प्रतापवान् है, और है बड़ा गतिवान्। ऐसा कोई कार्य नहीं, जिसे मन न कर सके, ऐसा कोई स्थान नहीं, जहाँ मनकी पहुँच न हो सके। जगत्के साधारणसे साधारण कार्यसे लेकर, परम जगत् तककी पहुँच भी मन के ही द्वारा होती है। संसारके संपूर्णऐश्वर्य, उत्थान, और सर्वोच्च स्थितियोंकी प्राप्ति मनके ही आधीन है। इसी प्रकार निर्वाण, और ईश्वरके सान्निद्धयका परम सुख भी मन के ही द्वारा प्राप्त होता है। कितना शक्तिशाली है 'मन', जो जीवन-रथके चक्रोंको चलाता है ! फिर क्या वह उपेक्षा करनेके योग्य है ?

नहीं, मन उपेक्ष्य नहीं, पूज्य है, परम पूज्य है। वेद, श्रुतियाँ, और गीता—सबने एक स्वरसे मनकी महिमा और उसके महत्वको स्वीकार किया है। वेदोंमें मनको एक ऐसा दिव्य नेत्र बताया गया है, जिसके द्वारा आत्म-साक्षात्कार तक किया जा सकता है। श्रुतिमें "मन सैवानु द्रष्टव्यम्" के द्वारा मनकी ही महत्ताका गान किया गया है। शुक्ल यजुर्वेदमें एक श्लोक है, जिसके अनुसार 'मन' संपूर्ण लौकिक और अलौकिक कार्योंका एक मात्र साधन है। देखिए:-

यज्जाग्रतो दूर मुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिव संकल्प मस्तु ॥

"मेरा वह मन धर्म संबंधी पवित्र संकल्प वाला हो, मनमें कभी पाप भाव न हों, जो जागृत अवस्थामें दूरसे दूर स्थानों तकमें जाता है और सुप्तावस्थामें पुनः अपने स्थान पर पहुँच जाता है। जो ज्योति-रूप आत्माको ग्रहण करनेका एकमात्र साधन होनेसे 'देव' कहा जाता है, जो भूत भविष्य, और वर्तमानको भी ग्रहण करने में समर्थ है, और जो विषयोंको प्रकाशित करनेवाली इन्द्रियोंका एकमात्र प्रवर्तक है।" गीतामें भी भगवान् श्रीकृष्णने 'मन'को अपनी विभूतिके रूपमें चर्चित किया है—"इन्द्रियाणां मनश्चास्मि"-इन्द्रियोंमें मैं ही मन हूँ। फिर तो कौन है. जो मनकी उपेक्षा करेगा ? जो मनकी उपेक्षा करेगा, निश्चय है, कि संपूर्ण जगत् उसके लिए शून्य बन जायगा, तमसावृत हो जायगा। पर प्रश्न यह है, कि 'मन' तो हर एक मनुष्यके पास होता है, और प्रत्येक मनुष्य शक्तिभर अपने 'मन'का आदर-सत्कार करता ही है। फिर प्रत्येक मनुष्य क्यों नहीं, मनकी आराधनासे उन अलौकिक और लौकिक

सुखोंको प्राप्त करता, जिनकी ओर श्रुति, और शुक्ल यजुर्वेदकी ऋचामें संकेत किया गया है। अवश्य, हमने 'मन' की 'उपेक्षा' और उसकी 'आराधना'को समझने और जाननेमें भूल की होगी। आइए, अपनी उस भूलको देखें। आखिर, वह कौनसा 'मन' है; दूसरे शब्दोंमें मनका वह कौनसा 'रूप' है, जो उपेक्षणीय नहीं है, और साथ ही साथ हमारे लिए अति पूजनीय भी है।

'यज्जाग्रतो दूर गुदैति दैवं' के अर्थ पर विचार कीजिए। कौनसा मन है, जो ज्योति स्वरूप आत्माको ग्रहण करनेका एक मात्र साधन है? क्या वह मन जो वासनाओंसे आवृत है, क्या वह मन जो बुरे विचारोंसे प्रच्छन्न है? नहीं, ऋचाकारने पहले ही उस मनके स्वरूपको चित्रित कर दिया है—"मेरा मन धर्म विषयक संकल्पवाला हो।" यही धर्म विषयक संकल्प वाला मन अनोपेक्षित है, परम पूजनीय है। यही 'मन' वह मन है, जो ज्योति स्वरूप आत्माको ग्रहण करनेका एकमात्र साधन है, और यही मन वह 'मन' है, जिसे गीतामें भगवान् 'वासुदेव' की संज्ञा दी गई है। यही मन पूजनीय है, परम पूजनीय है। जिस मनुष्यको यह मन मिल गया है, उसे मानों सर्वस्व प्राप्त हो गया है। यही वह मन है, जो मनुष्यके जीवन-रथके चक्रों को समतल, सुन्दर भूमि पर चलाता है, यही वह मन है, जो मनुष्यको यज्ञादि कर्मोंमें प्रवृत करता है, यही वह मन है जो मनुष्यको वेद-वेदाङ्गों और शास्त्रोंके पठन-पाठनमें लगाता है, यही वह मन है. जो मनुष्यको साधना-उपासनामें रत करता है, यही वह मन है, जो मनुष्यको आत्म-साक्षात्कार कराता है, और यही वह मन है, जो मनुष्यको लोक-कल्याणके कार्योंमें लगा कर उसे परम यशका भागी बनाता है। इसी मनकी प्राप्तिके लिए शुक्ल यजुर्वेदके ऋषिने अपनी निम्नांकित ऋचामें भी आकांक्षा प्रकट की है—

येन कर्माण्यपसोमनीषिणो यज्ञे कृण्वन्तिविदथेषु धीराः।
यदपूर्वंयक्षयन्तः प्रजानां तन्मेः मनः शिव संकल्पमस्तु॥

'जिस मनके स्वस्थ और निर्मल होने पर मेधावी पुरुष यज्ञ-कर्म करते हैं, जो संकल्प-विकल्पोंसे रहित आत्मरूप ही है, जो पूज्य है, और जो प्राणियोंके शरीरके भीतर ही स्थित है, वह मेरा मन शुभ संकल्पवाला हो।'

सचमुच शुभ संकल्पवाला मन ही सर्वस्व है, ध्येय है, गेय है. वदनीय है। यही वह मन है, जिसकी हमें आराधना करनी है, अर्चना करनी है। इसी मनमें वह धैर्य जागृत होता है, जिसका अंचल पकड़कर हम विपत्तियोंके सागरके पार पहुंच जाते हैं। इसी मनमें ज्ञान-विज्ञानकी शक्तियाँ जागृत होती हैं। इसी मनमें उत्कर्षके भाव उदय होते हैं। यही वह मन है, जिसमें वीरता, साहस और पुरुषार्थके भाव जागृत होते हैं। इसी मनकी प्रेरणासे सिद्धियाँ-सफलताएँ प्राप्त होती हैं। वेदोंमें इसी मनको सर्व सुखोंके आधारके रूपमें घोषित किया है। गीतामें इसी 'मन' को, सर्वश्रेष्ठ कहकर उसकी आराधनाकी ओर प्रेरित किया गया है। पर 'मनकी आराधना' का अर्थ क्या है? क्या यह, कि हम 'मन'के अनुसार चलें, या उसके ताल पर नृत्य करें? नहीं, मनकी आराधना का अर्थ है, हम ऐसा प्रयत्न करें, कि वह शुभ संकल्पों वाला बने। हमें अपने मनकी आराधनामें दिन-रात यही सोचना है, यही प्रयत्न करना है। चाहे जिस प्रकारसे हो, हमें अपने मनको शुभ संकल्पोंवाला बनाना होगा। शुक्ल यजुर्वेदके

ऋषिने अपनी कुछ ऋचाओंमें, मनको शुभ संकल्पोंवाला बनानेके लिए बड़ी ही भावमय प्रार्थनाएँकी हैं। निम्नांकित पंक्तियोंमें ऋषिकी प्रार्थनाओंका ही एक भाव-प्रतिबिम्ब है :—

"जो मन विशेष रूपसे ज्ञान उत्पन्न करनेवाला है, पदार्थोंको प्रकाशित करनेवाला ज्ञान-जनक है, धैर्य रूप है, सभी प्राणियोंमें स्थित है, अन्तर्ज्योतिको प्रकाशित करनेवाला है, जिसकी सहायता तथा अनुकूलताके बिना कोई कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता, मेरा वह मन शुभ संकल्पोंवाला हो।"

"जिस मनके द्वारा सब कुछ भली प्रकार जाना जाता है, ग्रहण किया जाता है, जिसके द्वारा भूत, भविष्यत् और वर्तमान संबंधी बातोंका ज्ञाने प्राप्त होता है, जो शाश्वत है, जो आत्म रूप है, और जिसके श्रद्धायुक्त तथा स्वस्थ होनेपर यज्ञादि किये जाते हैं, मेरा वह मन शुभ संकल्पोंवाला हो।"

"जैसे कुशल सारथी हाथमें चाबुक लेकर घोड़ोंको जिधर चाहता है, लेजाता है, उसी प्रकार जो मन मनुष्योंको जिधर चाहता है, ले जाता है तथा जिस प्रकार सुसारथी बागडोर अपने हाथमें लेकर घोड़ोंको अपने मन चाहे स्थानपर ले जाता है, उसी प्रकार जो मन मनुष्योंको चाहे जहाँ ले जा सकता है, जो प्राणियोंके हृदयमें प्रतिष्ठित है, जो शरीरके वृद्ध होने पर भी वृद्ध नहीं होता, और जो अत्यन्त वेगवान है, मेरा वह मन शुभ संकल्पोंवाला बने।"

आइए ऋषिके स्वरमें स्वर मिलाकर, हम भी अपने मनको शुभ संकल्पोंवाला बनानेके लिए प्रार्थना करें। यही मनकी आराधना है—उसकी श्रेष्ठ उपासना है। मनकी आराधनामें, हमें मनको पवित्र भावोंसे पूर्ण करना है। हम मनको जितना ही अधिक पवित्र भावोंका अर्घ्य दे सकेंगे, हमारी मनकी आराधना उतनी ही अधिक सफल होगी। पवित्र भावोंका अर्घ्य ! हाँ, विकारों, वासनाओंसे दूर, केवल शुद्ध मनसे शुद्ध मनको, शुद्ध मनका समर्पण।

—विडम्बना—

संगीतज्ञ मधुर स्वरमें बोला—'जीवन एक लय है।'

नर्तक वाद्य फेंककर उठ खड़ा हुआ—'झूठा जीवन शिवके नृत्यका ताल मात्र है।'

अपना आडम्बरपूर्ण चोंगा सँभालते हुए, और लम्बी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए धर्मोपदेशकने गंभीर स्वरसे कहना प्रारम्भ किया—'नासमझो,यह जीवन तो केवल उस परम पिता-परमात्माका एक उपदेश है।......'

उसने अपना वाक्य पूरा भी नहीं कर पाया था, कि योद्धा बीचमें आ कूदा। म्यानसे खड्ग निकालकर सक्रोध उसने गर्जन किया—'अरे, जीवन तो बस तलवार की झंकार है।'

जीवनकी भिन्न-भिन्न व्याख्या सुनकर वे चारों क्रुद्ध हो गये। चारों आपसमें जूझ पड़े, और कटकर समाप्त हो गये।

हाय, यह निर्बोध मानव-संतान, सदियोंसे अपने जीवनकी मीमांसा करनेमें जीवनको इसी भाँति समाप्त करती जा रही है। यह कैसी विडम्बना है ?

डा० हरिनन्दनपाण्डेय

"भक्तिपूत तपस्यासे तुमने मेरी प्रीति पाई है। तुमने पूर्व जन्ममें मेरे द्वार पर तुलसीका पेड़ लगाया था, तभी इस जन्ममें तुम्हारे आँगनमें कल्पवृक्ष विराजमान है। अब उसी भक्तिके कारण कदापि तुम्हारा मुझसे वियोग न होगा।"

सत्यभामा—श्रीकृष्णकी जन्मजन्मकी प्रेयसी

एक श्रीकृष्ण-भक्त

एक दिन देवर्षि नारद कल्पवृक्षके दिव्यपुष्प लेकर श्रीकृष्णके दर्शनके लिए द्वारकापुरी गए। वहाँ श्रीकृष्णने सादर पाद्य-अर्घ्यसे उनकी पूजाकी। महर्षि नारदने भी अपने हाथके दिव्य पारिजात पुष्प श्रीकृष्णको दिये। उन दिव्य-पुष्पोंको पाकर श्रीकृष्ण अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने अन्तःपुरमें जाकर अपनी पत्नियोंको पुष्प दे दिये। परन्तु पुष्प बँटनेके समय अपनी प्रिया सत्यभामाको विस्मृत हो गये। सत्यभामाके लिए यह अपमान और निरादर असहनीय था। वह अत्यन्त क्रुद्ध हो गयीं। श्रीकृष्णको सत्यभामाके क्रोधका समाचार प्राप्त हुआ। अपनी अनिच्छाकृत इस विस्मृतिके लिए उनके मनमें पश्चाताप होने लगा। उन्होंने मन हीमन अपने वाहन गरुड़को स्मरण किया। तत्काल वहाँ गरुड़ उपस्थित हुआ। तब श्रीकृष्ण ने अपने वाहन पर चढ़कर सत्यभामासे कहा—

'प्रिये, महाभागे, मेरा अपराध क्षमा करो, यह मेरी भूल अनिच्छाकृत है। तुम क्रोध न करो। मैं अभी सुरलोक जा रहा हूँ। यदि आवश्यक हुआ तो मैं देवराजके साथ युद्ध करके भी कल्पद्रुम लाकर तुम्हारे आँगनमें लगा दूँगा। ताकि तुम सदा दिव्य पुष्प पा सको।'

सत्यभामासे ऐसा कह कर श्रीकृष्ण देवलोकमें देवेन्द्रके समीप गये और देवराजसे कल्पवृक्षके लिए प्रार्थना की। देवराजने सुनकर कहा :—

'प्रभो, आपके आगमनसे सुरलोक धन्य हुआ है। परन्तु मेरे लिए आपकी प्रार्थना पूर्ण करना सम्भव नहीं है। यह देवद्रुम मर्त्य लोकमें नही जा सकता है। मुझे खेद है।'

इन्द्रका वचन सुनकर, प्रार्थना भंगसे श्रीकृष्णको अत्यन्त क्रोध और निराशा हुई। एकाएक उन्होंने मनमें निश्चय कर लिया, और कल्पवृक्षको मूलसे उखाड़कर गरुड़ पर रख दिया। वज्रधर सुरपतिने वज्र उठाकर गरुड़ पर प्रहार किया। गरुड़ इन्द्रवज्रकी गौरवरक्षाके लिए पंखका एक पल्लव छोड़कर, वहांसे उड़ गये।

श्रीकृष्णने सत्वर द्वारावती पहुँचकर सत्यभामाके गृह-प्रांगणमें उस कल्पवृक्षको रोपण कर दिया। तब सत्यभामाने हर्षसे उत्फुल्ल होकर अपने पति श्री वासुदेवसे कहा—

"मैं धन्य हूँ। आपको पति व जीवन-वल्लभ पाकर मेरा जन्म सार्थक हुआ। मेरे सौभाग्यकी सीमा नहीं है। परमदुर्लभ नन्दन काननका कल्पवृक्ष आज मेरे घरमें विराजमान है। त्रैलोक्याधिपति, श्रीपति मेरे पति हैं। अब आप मुझे कृपया यह बताइये कि पूर्वजन्ममें मैंने ऐसा कौनसा दान-पुण्य, व्रतपालन व तपस्या की थी जिसके फलस्वरूप मैं भवानीके सदृश सौभाग्यशालिनी हूँ ?"

सत्यभामाका प्रश्न सुनकर, श्रीकृष्णने कहा—प्रिये, मैं तुम्हारा पूर्व जन्म-वृतान्त कहता हूँ, सुनो—

"सत्ययुगके अन्तमें मायापुरीमें वेद पारंगत, अतिथि सेवा-परायण, देवशर्मा नामके एक द्विजोत्तम ब्राह्मण रहते थे। गुणवती नामकी उनकी एक कन्या थी। देवशर्माने चन्द्रनामके अपने एक शिष्यके साथ गुणवतीका विवाह कर दिया। एक दिन देवशर्मा चन्द्रके साथ वनमें कुश, समिधा आदि लेने गये थे। वहां हिमाद्रिके पाद देशमें एक भयंकर राक्षसने इन पर आक्रमण किया। उसी राक्षसके हाथ, उन दोनों की मृत्यु होगयी।

पिता व पतिकी निधन वार्ता सुनकर, गुणवती अत्यन्त शोकार्ता होकर क्रन्दन करने लगी। किन्तु फिर धैर्यपूर्वक उसने घरकी द्रव्यसामग्रियोंको बेचकर, पिता व पतिकी पार-लौकिक क्रिया सम्पन्न की। वह तपस्विनी-जीवन व्यतीत करने लगी। वह अत्यन्त विष्णु-भक्तिपरायण थी। विष्णुभक्ति व तपस्यामें लीन रहकर, गुणवती वृद्धावस्थाको प्राप्त हुई। इसी अवस्थामें एकदिन गुणवती गंगास्नान करने गयी और जलमें प्रवेश करते ही काँपने लगी। अपनी विवशताके कारण वह अत्यन्त व्याकुल हो गयी। तभी आकाशसे एक विमान आया। शंख-चक्र-गदा-पद्मधर, विष्णुमूर्ति विष्णुकिंकरगण उस विमानमें बैठे थे। वे गुणवतीको परम समादरसे विमान पर विठा कर वैकुंठ ले गए। ज्वलनग्निशिखोपमा, पुण्यवती गुणवती मेरे समीप लायी गयी। फिर ब्रह्मादिकी प्रार्थनासे, जब मुझे इस धरातल पर आना पड़ा, मेरे अनुचरोंके साथ गुणवती भी यहाँ अवतरित हुई। मेरे अनुचर ही यादवगण हैं, तुम्हारे पिता सत्तजित ही देवशर्मा हैं, चन्द्रशर्मा हैं अक्रूर और हे प्रिये सत्यभामे, तुम ही गुणवती हो। भक्तिपूत तपस्यासे तुमने मेरी प्रीति पायी है। तुमने पूर्वजन्ममें मेरे द्वारपर तुलसीका पेड़ लगाया था, तभी इस जन्ममें तुम्हारे आंगनमें कल्पवृक्ष विराजसान है। अब उसी भक्तिके कारण कदापि तुम्हारा मुझसे वियोग न होगा।"

सत्यभामा वैकुंठपति श्री वासुदेवनारायणका वचन सुनकर हर्षसे विह्वल होगयी। त्रिभुवनके एकमात्र आराध्य श्रीकृष्णके चरण-रज मस्तक पर लेकर, सीमन्तिनी सत्यभामाने अपना जीवन सार्थक किया।

ईश्वरके व्यक्त रूप-सुन्दरम्का भावनामय चित्र

"सत्यं, शिवं, सुन्दरम्के रूपमें हमारे देशके मनीषियों और कलाकारोंने बार-बार परमेश्वरकी प्रार्थनाकी है। परमेश्वर ही है, जो सुन्दरम्के रूपमें कण-कणमें समाविष्ट है। वह ईश्वर ही है, जो संसारके विभिन्न दृश्यों में सुन्दरताके रूपमें समाविष्ट होकर हमें अपनी ओर आकर्षित करता है। अतः हम कहें कि सुंदरताका संबंध इंद्रियोंसे नहीं, आत्मासे है।"

सुन्दरम्की अनुभूति

श्रीअविनाशचन्द्र

'सुन्दरम्'का अर्थ सौन्दर्य या सुन्दरता है। ऐसा कौनसा मनुष्य है, जिसके मनको सुन्दरता नहीं बाँधती? साधारण मनुष्योंकी तो बात ही क्या, बड़े-बड़े योगियों, और संतोंके मनको भी सुन्दरता बाँध लेती है। सुन्दरता जहाँ भी कहीं होती है, भागता हुआ मन 'रुक' जाता है—अपनी गति रोककर रम जाता है। सुन्दरता भिन्न-भिन्न रूपोंमें जगत्में मिलती है। पर उनमें उसके दो रूप मुख्य हैं—'नाम, और रूप।' नाम और रूपमें ही, सुन्दरता अपने असंख्य चित्रोंमें चारों ओर चित्रित दिखाई पड़ती है। यद्यपि उन सभी चित्रोंमें 'सुन्दरता' ही है, किन्तु वह एक समान सबके मनको विमुग्ध नहीं करती। किसीका मन किसी दृश्य-चित्रको देखकर नाच उठता है, तो किसीके मनको उसीमें 'रस' और 'आनन्द'का अभाव दिखाई पड़ता है। तात्पर्य यह है कि सुन्दरताका सम्बन्ध 'चित्त' और 'बुद्धि'से है। पर यह तो निश्चय है, कि सुन्दरतासे आनन्द और आह्लादका उद्रेक होता है। जहाँ और जब भी सुन्दरता की अनुभूति होती है, चित्त आनन्दकी तरङ्गोंमें डूब जाता है।

पर यह बात उपेक्षणीय नहीं है, कि 'सुन्दरता' जब 'सुन्दरता' है, तब वह क्यों सबके चित्तको एक समान विमुग्ध नहीं करती? क्यों किसी एक 'पुष्प'की कोमलता, और सुन्दरता किसी एक मनुष्यके मनको तो नचा देती है, किन्तु दूसरा उसकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता? क्यों किसी एकके स्वर-माधुर्यमें किसी मनुष्यको तो अपूर्व 'रस का आभास' होता है, किन्तु दूसरेको उसमें 'रसाभास' होने को कौन कहे, 'कड़ुवाहट' ही मिलती है? इसके उत्तरमें केवल यही बात कही जा सकती है, कि प्रत्येक मनुष्यका चित्त अपने-अपने संस्कारके अनुसार पृथक्-पृथक् होता है। यह संस्कार उसका जन्मका संस्कार होता है—उसका अपना संस्कार होता है। इसी संस्कारका यह परिणाम । कि कोई मनुष्य शिवकी प्रतिमाका उपासक होता

है, तो कोई विष्णुकी; कोई देवीकी प्रतिमाकी पूजा करता है, तो कोई श्रीकृष्ण और रामचन्द्र जीकी। संस्कार-भेदके कारण ही बहुतसे लोग महावीर, और भैरवकी उपासना करते हैं। बहुत से ऐसे लोगभी होते हैं, जो भूत-प्रेतोंकी आराधना करते हैं। यद्यपि 'भगवान्' के सभी प्रतीकों में भगवान्के ही भिन्न-भिन्न रूपों की ही प्रतिस्थापना होती है, पर मनुष्यके संस्कार-भेदके कारण उनका प्रभाव सबके ऊपर पृथक् पड़ता है। यही बात सौन्दर्यके संबंधमें भी कही जा सकती है। पर यह होते हुए भी, यह तो सत्य ही है कि सौन्दर्य सबके मनको बाँधता है, सबकी आँखोंको अपनी ओर आकर्षित करता है।

प्रश्न बड़ा महत्वपूर्ण है कि 'सुन्दरता' हमें क्यों प्रिय लगती है? क्यों 'सुन्दरता'को देखकर हमारा मन अपनेको भूल जाता है? सुन्दरता हमें केवल प्रिय ही नहीं लगती, वरन् उसके लिए हमारे मनमें प्यास भी रहती है। हम सुन्दरताकी खोजमें विकल रहते हैं। हम जब भी जहाँ भी सुन्दरताको देखते हैं, वह हमें नवीन दिखाई पड़ती है। उसे देखकर भी, उसे देखनेकी उत्कण्ठा हमारे मनमें बनी ही रहती है। हम ज्यों-ज्यों उसे देखते हैं, फिर-फिर उसे देखनेकी मनमें लालसा जगा करती है। 'सुन्दरता'के सम्बन्धमें यह बड़ी अनोखी बातें हैं, जिन पर दृष्टि जानी ही चाहिए। अवश्य, सुन्दरताका सम्बन्ध उन बाह्य इन्द्रियोंसे नहीं है, जिन्हें हम नाक, कान, और आँख इत्यादि कहते हैं। यद्यपि हमें बाह्य इन्द्रियोंसे ही 'सुन्दरता' की अनुभूति होती है, पर उस अनुभूतिमें जो 'नित्यता' और 'शाश्वतता' है, उससे प्रकट होता है, कि सुन्दरताका संबन्ध किसी अपूर्व 'सत्ता'से है—किसी 'अखण्ड' और अलक्ष्य 'सुन्दरम्'से है। यदि ऐसा न होता, तो 'सुन्दरता' सबके चित्तको न बाँधती—'सुन्दरता'के लिए, प्रत्येकके मनमें, प्रत्येक क्षण प्यास न रहती।

अवश्य, सुन्दरम्का संबंध किसी अखण्ड सत्तासे ही है। वह अखंड सत्ता परमेश्वर है। परमेश्वर को ही 'सत्य'का प्रतिरूप कहते हैं। परमेश्वर स्वयं सत्य है, शाश्वत है, नित्य नवीन है। परमेश्वरके लिए ही संपूर्ण जीवोंमें एक समान प्यास रहती है—आकुलता रहती है। अतः हम 'सुन्दरम्' या सौन्दर्यको भी परमात्माका ही रूप मानेंगे। 'सत्यं, शिवं, सुन्दरम्'के रूपमें हमारे देशके मनीषियों और कलाकारोंने बार-बार परमेश्वरकी प्रार्थनाकी है। परमेश्वर ही है, जो 'सुन्दरम्'के रूपमें कण-कणमें समाविष्ट है। वह ईश्वर ही है, जो संसारके विभिन्न दृश्योंमें सुन्दरताके रूपमें समाविष्ट होकर हमें अपनी ओर आकर्षित करता है। जगत्के कण-कणमें परमेश्वर सुन्दरताके रूपमें ही भासमान है—आलोकित है। अतः हम यह कहेंगे कि सुन्दरता का संबंध इन्द्रियोंसे नहीं, आत्मासे है। आत्मा ईश्वरका अंश है। उस ईश्वरका अंश है, जो स्वयं सौन्दर्य है। अतः कहना पड़ेगा कि 'आत्मा' और सौन्दर्यका पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध है।

ईश्वरकी सत्ताके रूपमें, सौन्दर्य विश्वकी निखिल वस्तुओंमें विद्यमान है। सौन्दर्य पुष्पों की अमराइयोंमें तो है ही, रेगिस्तानों की गोदमें खड़े उन वृक्षोंमें भी है, जिनमें फूल और पत्ते नहीं होते। सौन्दर्य सुन्दर भवनोंमें तो है ही, उन खंडहरोंमें भी है, जो अपनी कहानियाँ स्वयं ही कहते और स्वयं सुना करते हैं। सौन्दर्य भव्य मन्दिरोंमें प्रतिष्ठित मूर्तियोंमें तो है ही, उन मूर्तियोंमें भी है, जो खंडित, उदास अत्र-तत्र पड़ी रहती हैं। हम इन सभी वस्तुओंको देखते हैं,

पर हमारे भीतर सौन्दर्यकी अनुभूति उसी समय होती है, या यों कहना चाहिए, कि हमारा मन उसी समय 'सौंदर्य'का अनुभव करता है, जब हमारे भीतर, या हमारी आत्मामें सौन्दर्यका बोध होता है। वस्तुमें जो सौंदर्य है, इन्द्रियोंको उसका आनन्द आत्माके बोधके पश्चात् ही प्राप्त होता है। यह सत्य है, कि इन्द्रियों की दृष्टि सर्व प्रथम 'वस्तु'के सौन्दर्य पर पड़ती है, पर यह भी सत्य है, कि इन्द्रियों को वस्तु के उस सौन्दर्यका बोध नहीं होता, जिसे शाश्वत सौन्दर्य कहते हैं। इस सौन्दर्यका बोध तो आत्माको ही उसकी दृष्टिके द्वारा होता है। अतः हम कह सकते हैं, कि सौन्दर्यमें आत्मवत् भाव है। आत्मवत् भाव इसलिए है, कि सौन्दर्य ईश्वरका प्रतिरूप होनेके कारण अपनाही—आत्माका ही प्रतिबिम्ब, गुण, या एक विशिष्टता है।

सौन्दर्यकी पूजा-आराधनामें भी आत्मीयता ही है। हम ईश्वरकी आराधना क्यों करते हैं? हम क्यों ईश्वरकी प्राप्तिके लिए बड़ी-बड़ी विपत्तियोंको भी गले लगाते हुए भय-भीत नहीं होते? इसलिए कि हम ईश्वरके हैं, और ईश्वर हमारा अपना 'सर्वस्व' है। यों हम अपने और ईश्वरके सम्बन्धको भूले रहते हैं, किन्तु जब हमें अपनी और ईश्वरकी अभिन्नता का ज्ञान होता है, तो हम ईश्वरके लिए अपना संपूर्ण भौतिक-स्वरूप छोड़नेके लिए उद्यत हो जाते हैं। यही बात सौन्दर्यके सम्बन्धमें भी कही जा सकती है। 'सौन्दर्य' से भी हमारा आत्मिक शाश्वत सम्बन्ध है। किन्तु जब तक हमें अपने सम्बन्धका बोध नहीं होता, हम उसे भूले रहते हैं। पर जब बोध होता है, तो हम सौन्दर्यकी अर्चनामें डूब जाते हैं। जिस प्रकार प्यास हमें विकल बना देती है उसी प्रकार सम्बन्धका बोध होने पर हम सौन्दर्यकी आराधना के लिए विकल हो उठते हैं। हम सतत उसकी खोज करते हैं, उसे देखते हैं, और उसके ऊपर अपनी सम्पूर्ण आस्थाओंको निछावर कर देते हैं। संसारमें कितने ही ऐसे महामानव हुए हैं, जिन्होंने सौन्दर्यकी आराधनामें महलोंके सुखोंका भी परित्याग कर दिया है। कितने ही ऐसे कलाकार, औद दार्शनिक हुए हैं, जिन्होंने गरीबीकी गोदमें घुट-घुट कर मरना स्वीकार किया हैं, पर फिर भी वे अपनी अन्तिम साँस तक सौन्दर्यकी आराधनामें लगे रहे, और लगे ही रहे।

सौन्दर्यके व्यापक प्रभाव और आकर्षणोंमें भी आत्मीयताका ही भाव है। सौन्दर्यका प्रभाव सबके ऊपर अमिट रूपमें पड़ता है। सौन्दर्य सबके मनको अपनी ओर खींचता है। सौन्दर्य जाति-पाँति और मजहबकी प्राचीरोंको तोड़कर उस क्षितिजकी ओर देखता है, जहाँ धरती और आकाशके रूपमें विश्वकी सम्पूर्ण मानवता एकमें सिमटी हुई दिखाई पड़ती है। यही तो आत्माका गुण और उसकी विशिष्टता है। अतः यह स्वीकार करना होगा कि 'सौंदर्य' और आत्मा—दोनोंमें अभिन्नता है। 'सौन्दर्य' आत्माका है, और आत्मा सौन्दर्यका है। दोनों एक दूसरेमें हैं—एक दूसरेके लिए हैं। अतः आकर्षण होना ही चाहिए, प्रभाव पड़ना ही चाहिए। आकर्षण वहीं होता है, जहाँ अपनापन होता है, टिकाव और ठहराव भी वहीं होता है, जहाँ 'स्व'की अनुभूति होती है। 'सौन्दर्य'की शाश्वतता और नित्यतामें केवल 'स्व' ही 'स्व' है।

सौन्दर्यकी शक्तिमयतामें भी आत्मीयताका ही भाव है। सौन्दर्य साधारण मनुष्यों की तो बात ही क्या, बड़े बड़े योगियों, और तपियोंकी हृदय-भूमिको तोड़ देता है। संसारमें कितने ही ऐसे मनीषी हो चुके हैं, जिनके हृदयसे, सौन्दर्यकी अनुभूतिके कारण, रचनाकी गंगा

तक प्रवाहित हो चुकी है। इसका कारण केवल यही है कि सौन्दर्य ईश्वरका व्यक्त रूप होने के कारण अपना ही रूप है। अपने ही रूपमें अपनेको बाँधनेकी अखण्ड शक्ति होती है। अपने ही रूपकी प्राप्तिके लिए अपनेमें वह विद्रोह होता है,जो समस्त विद्रोहोंको भी पीछे छोड़ जाता है। अपने ही रूपके प्रति अपनेमें वह प्रेम, और विह्वलता जाग्रत होती है,जो कभी-कभी पवित्र रचनाकी गङ्गा बनकर फूट निकलती है। सौन्दर्य अपनाही रूप है। अतः सौन्दर्यकी शक्तिमयता भी अपनी ही शक्तिमयता है।

अतः अब इस कथनमें संकोच नहीं कि सौन्दर्य हमारे लिए है, और हम सौन्दर्यके लिए हैं। सौन्दर्य एक ऐसा साधन है, जिसके द्वारा हमें परमात्माकी अनुभूति होती है। स्वयं परमात्मा ही कण-कणमें सौन्दर्यके रूपमें आभासित हो रहा है। अतः जितना ही अधिक हम सौन्दर्यकी आराधना करेंगे; दूसरे शब्दोंमें जितना ही अधिक हमें सौन्दर्यकी अनुभूति होगी, उतना ही अधिक हम आत्माके विकास की ओर बढ़ेंगे—परमात्माकी ओर भी बढ़ेंगे। सौन्दर्य की अनुभूतिके लिए यह आवश्यक है कि हम बाह्यसे पृथक् होकर अन्तर्जगतमें प्रवेश करें। क्योंकि यहाँ हमने जिस सौन्दर्यकी चर्चा की है, उसका सम्बन्ध अन्तर्जगतसे ही है। बाह्य जगत् में वह आभासित अवश्य है, पर उसकी भावमय अनुभूति अन्तर्जगतमें ही होगी। अन्तर्जगतमें ही वह सौन्दर्य, जो जगत्की वस्तुओंमें भासित हो रहा है, उस सिंहासनपर आसीन हो सकेगा, जिसे 'नित्यता'का सिंहासन कहते हैं। अतः सौन्दर्यकी आराधनाके लिए हमें अपने अन्तर्जगत् को ही सँवारना और सिंगारना होगा। हमारा अन्तर्जगत् जितना ही अधिक सुन्दर बन सकेगा, उतनी ही सुन्दरम्की अर्चना भी होगी, और होगी उतनी ही अधिक हमें शाश्वत सुन्दरताकी अनुभूति भी !

ईश्वरकी आराधनाका यह भी एक श्रेष्ठ साधन है। कितने ही दार्शनिक और भक्त, कवि, कलाकार तथा चित्रकार सुन्दरम्की आराधनाके द्वारा ही उसे प्राप्त करनेमें समर्थ हो सके हैं, जिसे महासुन्दरम् कहते हैं।

हे मन !

"मनुवा ! सदा सावधान रहो, कभी भी दुश्चित्त मत बनो। देखो, एक मात्र भगवान् ही जगत्का कर्त्ता है। उसीने यह सारा विश्व रचा है। उससे कभी गर्व न करो। यह देह तो भगवान्की है, और वित्त है कुबेरका। फिर इस जीवका रहा ही क्या ? देने-दिलानेवाला लेने-लिवानेवाला और करने-करानेवाला एकमात्र देव वही है। प्राणी तो निमित्तमात्र बनता है। निर्वाणमें तो देव एक ही है। लक्ष्मी उसकी दासी है—और सारी सत्ता भी उसीकी है, जिसके बिना जीव खड़ा ही नहीं रह सकता।

अब किसकी शरण जायें ? और सत्य किसे मानें ? कारण इस भूमण्डल पर अनेक पंथ और मत चल रहे हैं। कोई सगुण मानता है तो कोई निर्गुण, किसी ने सब कुछ त्याग दिया है तो कोई सब कुछ भोगता हुआ भी उसे 'राजयोग' बतलाता है। रामदास पतेकी बात यह बतलाते हैं कि भक्तिके बिना सारा व्यर्थ है।"

श्रीसमर्थरामदास

"प्रेम नेत्रोंसे नहीं, हृदयसे देखता है। प्रेम मानवताको ईश्वरीय वरदानके रूपमें मिला है। आत्माकी पवित्रता इसीपर आधारित है। प्रेम पृथ्वीका स्वर्ग है। प्रेम ईश्वरकी सर्व श्रेष्ठ पूजा है।"

प्रेम ही ईश्वर है

स्वामी शिवानंद सरस्वती

शारीरिक प्रेम वासना है। भगवान्की लालसा प्रेम या भक्ति है। यही शुद्धतम प्रेम है। यह प्रेम, बस प्रेमके लिए ही है। किसीको प्रेम करनेसे यदि आपकी स्वार्थ-सिद्धि होती है, तो वह सकाम प्रेम है। इससे आप संसारके मोह-जालमें बँध जाते हैं। सभी प्राणियोंसे यह मान कर प्रेम करना कि वे भगवान्की ही सृष्टि हैं, शुद्ध प्रेम है। यही श्रेष्ठ आध्यात्मिक प्रेम भी है। यह मुक्तिका मार्ग है। शुद्ध प्रेम हृदयको पवित्र करके देवत्व प्रदान करता है। भगवान् प्रेमका ही प्रतिरूप है। वह प्रेमका सागर है। यदि आप भगवान्को प्राप्त करना चाहते हैं, तो स्वयं प्रेमका आगार बन जाइए। शुद्ध प्रेम ही परम आनंद तथा मधुरता है। आप प्रेमसे बोलिए, प्रेमसे कार्यभी कीजिए और फिर देखिए, शीघ्र ही परम शान्तिके राज्यमें आपका प्रवेश हो जायगा। घृणा घृणासे नहीं, प्रेमसे वदलती है। सहनशीलता ही प्रेमकी प्रकृति है। प्रेमसे प्रेरणा मिलती है, पथ आलोकित होता है, और मार्ग-दर्शन होता है। प्रेम वास्तवमें लेना और पाना नहीं, प्रत्युत् देना है। प्रेमही सर्वोत्तम है, सम्मान है, शान्ति है और शुद्ध जीवन है। प्रेमसे टूटे हुए हृदय जुड़ जाते हैं। यह मोक्ष-प्राप्तकी सरलतम कुंजी है। प्रेमसे प्रेम प्रेरित होता है। प्रेमही जीवनका रक्षक है। प्रेम आध्यात्मिक मदिरा है। प्रेमसे परम शान्ति, अखण्ड आनन्द, और अमरत्व प्राप्त होता है।

निस्वार्थ और शुद्ध मनसे प्रेम करनाही महानता है। शुद्ध प्रेममें स्वार्थका अणु मात्र भी नहीं टिक सकता। माँ का प्रेम कभी समाप्त नहीं होता,कभी नहीं वदलता, कभी नहीं थकता। वह सदैव सहिष्णु होकर कष्ट सहता जाता है।

सबसे प्रेम कीजिये—सबको गले लगाइए। सबको अपनी प्रेम-सम्पत्तिका भागीदार बनाइए। सार्वभौमिक प्रेमकी सृष्टि कीजिए। अपने शत्रुओं और अपनेसे छोटे मनुष्योंसे प्रेम कीजिए। सभी पशुओं से प्रेम कीजिए। प्रेम महान् वलिदानकी शक्ति देता है। प्रेम दूसरोंकी सहायता करने और उन्हें प्रसन्न रखनेके लिए सदा प्रयत्नशील रहता है। प्रेम क्षमा रूप है। शुद्ध और सच्चा प्रेम अमर, अटल, और अखण्ड है। प्रेमके द्वारा मनुष्य निःस्वार्थ भावसे, दूसरोंके सुख-दुख का भागीदार वनकर उन्हें सुखमय बना सकता है। नश्वर और सांसारिक वस्तुओंसे प्रेम न कीजिए, यदि आप ऐसा करेंगे तो आपको केवल दुख ही नहीं होगा, वरन्

आप अपना सर्वनाश भी करेंगे। भगवान्‌से प्रेम कीजिए। अपनी आत्मासे प्रेम कीजिए। आपको परमानन्द प्राप्त होगा, आप अमर बनेंगे।

प्रेमका अन्न खाइए, प्रेमका पान कीजिए, प्रेममें स्नान कीजिए, प्रेममय वचन बोलिए। प्रेमकी नींद सोइए। प्रेममय चिंतन कीजिए, प्रेममय कर्म कीजिए। इतना ही नहीं, स्वयं प्रेममय बन जाइए। प्रेममेंसे ही यह जगत् निकला है। प्रेम पर ही यह आधारित है और अन्ततः प्रेममें ही इसे परिवर्तित होना है। अपने मनके क्षेत्रमें जप, तप, कीर्तन, भजन, श्रद्धा, भक्ति, और सत्संग आदिके द्वारा प्रेमकी खेती कीजिए। जीवन एक सुन्दर पुष्प है और प्रेम उसका मधु है। प्रेम ही अध्यात्म शक्ति का नित्य चेतनसार है। प्रेम वह स्वर्णिम बंधन है, जो हृदयको हृदयसे, मनको मनसे, और आत्माको आत्मासे बाँधता है। प्रेममें तर्क-वितर्क नहीं होता। प्रेम अपमान या दुर्व्यवहारसे प्रभावित नहीं होता। प्रेम नेत्रोंसे नहीं, हृदयसे देखता है। प्रेम मानवताको ईश्वरीय वरदानके रूपमें मिला है। आत्माकी पवित्रता इसी पर आधारित है। प्रेम पृथ्वीका स्वर्ग है। प्रेम ईश्वरकी सर्वश्रेष्ठपूजा है। प्रेम भय, शंका और दुःखको नाश करने वाला है। आप अपने पड़ोसीसे उतना ही प्रेम कीजिए, जितना आप अपने आपसे करते हैं। अपने पूर्ण हृदय, मन और आत्मासे भगवान्‌को प्रेम कीजिए, फिर देखिए आपको मुक्ति प्राप्त होती है या नहीं !

श्रीकृष्ण गीताका पुरुषोत्तम योग

पुनि बोले भगवान् जगत् पीपर को तरु है।
और तरुनि जड़, अधः सुता की जड़ ऊपर है॥
शाखा नीचे चले विलक्षण पेड़ कहावे।
पत्ता जाके वेद चारिई पत्र लगावे॥
श्रुति इस्मृति अव्यय कहत, ऐसो यह संसार तरु।
जो जाकूं जानें सविधि, जानत सब वह विज्ञ वरु॥१॥

गुन तीनिहु जल कहें बढ़ै शाखा जिहि पाई।
कोपल कहत प्रवाल रूप तिहि विषय बताई॥
जितनी जग में योनि सबहिं शाखा कहलावें।
देव मनुज अरु असुर उपर नीचे फहलावें॥
मनुज लोक में करमतें, बाँधन बारी जड़ अमित।
मैं मेरी अरु वासना, ऊपर नीचे सब जमत॥२॥

जा तरुवर को रूप नहीं देखन में आयो।
जैसे जो यह सुन्यो विचारो तो नहिं पायो॥
जाको आदि न अन्त वेद वित यही बतायो।
भली भाँति नहिं कही प्रतिष्ठा जगत कहायो॥
जाकी अति दृढ़ मूल है, मैं मेरी जग वासना।
काटो शस्त्र असंग तें, जातें सुखकी आशना॥३॥

श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारी

[अप्रकाशित सार्थ छप्पय गीतासे]

सांसारिक दुःखोंसे छूटनेका अनुभूत मंत्र

"यदि हम दुःखोंसे छूटना चाहते हैं और अपने जीवन तथा कुटुम्ब और समाजको सुखी बनाना चाहते हैं तो हमें यथासंभव उसी मार्ग पर चलना चाहिए, पितामहने अपने उपदेशमें जिसका उद्‌घाटन किया है।"

आइए, व्रत लें कि हम सब उसी मार्ग पर चलेंगे। यही वास्तविक श्रीकृष्णाराधना है।

क्या दुःखोंसे मुक्ति पाना चाहते हैं?

श्री भगवतीप्रसाद

महाभारतका युद्ध समाप्त हो गया था। कौरवोंमें वयोवृद्ध पितामह भीष्म वाणोंसे आहत होकर, अर्जुन द्वारा निर्मित शरशय्या पर, युद्ध भूमिमें मृत्युकी प्रतीक्षा कर रहे थे। श्रीकृष्ण भगवान्‌की प्रेरणासे, पाण्डव उन्हें साथ लेकर भीष्म पितामहके पास उनका अंतिम उपदेश प्राप्त करनेके लिए पहुँचे।

युधिष्ठिरने पितामहसे प्रश्न किया—"महाभाग, मनुष्य जगत्‌के उन दुःखोंसे किस प्रकार मुक्ति पा सकता है जो उसे दिन रात समाकुल किए रहते हैं!"

पितामहने युधिष्ठिरके प्रश्नके उत्तरमें दुःखोंसे छूटनेके जो उपाय बताये, वे बड़े उपयोगी और सारगर्भित हैं। वस्तुतः यदि मनुष्य उनका आश्रय ग्रहण करे तो वह सांसारिक दुःखोंसे बहुत कुछ अंशोंमें छूट सकता है।

पितामहके उपदेशित उपाय इस प्रकार हैं—

'किसी भी मनुष्यको, जो दुःखोंसे मुक्ति पाना चाहता है, दम्भ नहीं करना चाहिये। आडम्बर-प्रदर्शनके लिए दम्भकोरा दिखावा मात्रही होता है। यह बहुत दिन तक नहीं चलता। इस प्रकारके दम्भीको अन्तमें दुःख भोगने ही पड़ते हैं।

'केवल प्रदर्शनके लिए पवित्र कर्म नहीं करने चाहिये, अपितु 'कर्तव्य' समझकर करने चाहिये। दम्भी मनुष्य 'शुभ कर्म' का केवल ढोंग रचता है। जो मनुष्य सच्चे मनसे पवित्र कर्म करता है, उसें दूसरोंके द्वारा प्रशंसा पानेकी आकांक्षा नहीं करनी चाहिये। निष्काम कर्मसे ही आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त हो सकती है—सच्ची शांति मिल सकती है।

'जीविकामें श्रम और ईमानदारीका प्रमुख रूपसे स्थान होना चाहिये। मनुष्यको अपना प्रत्येक कार्य 'करणीय' समझकर ही करना चाहिये। कर्तव्य-पालनमें न तो किसी प्रलोभनमें पड़ना चाहिये और न यह भाव मनमें लाना चाहिए, कि उस पर जो कार्य-भार है, वह उसके किसी अन्य सहयोगीसे अधिक है।

'व्यवसायियोंको चोर-वाजारी, करोंकी चोरी, और नाप-तोलकी अनियमितताओंसे वचना चाहिए। यह महान् दुर्गुण है। कोई भी जीविका सम्वन्धी ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए, जिसे दूसरोंके सामने प्रकट करनेमें संकोच और लज्जाका अनुभव हो।

'मनको वशमें करके, उसे विपयोंकी लालसाकी ओरसे रोकना चाहिए। विपयोंकी लालसाके बढ़ जाने पर उचित अनुचितका ज्ञान नष्ट हो जाता है। बुद्धि कुंठित हो जाती है। कर्तव्य-कर्मका ज्ञान नहीं रहता, और अन्तमें दुःख भोगना पड़ता है।

'पति-पत्नीमें परस्पर प्रेम और धर्मानुकूल आचरण होना चाहिए। सन्तान प्राप्त करने के उद्देश्यसे ही दाम्पत्य-धर्ममें प्रविष्ट होना चाहिए। अत्यधिक कामोपभोग रोग, और आयुकी क्षीणताका कारण बनता है। युवावस्थामें जिनकी प्रवृति 'काम' की ओर अधिक रहती है, उनका नैतिक पतन तो होता ही है, वृद्धावस्था उनके लिए अधिक दुखद बन जाती है।

'दूसरोंसे अधिक कटुवचन सुनकर भी, मुखसे कड़ी वात नहीं निकालनी चाहिए। यदि हमारा दोप नहीं है, तो कटुवचन कहने वाला अन्तमें स्वयं लज्जित हो जायगा। सत्य सत्य ही है, वह छिपकर नहीं रहता।

'किसी भी स्थितिमें क्रोध नहीं करना चाहिए। यदि कोई दूसरा क्रोध कर रहा हो तो अपने मृदु वचनसे उसके क्रोधको शान्त करनेका प्रयत्न करना चाहिए। गीताका वचन है—"क्रोधसे अविवेक उत्पन्न होता है। अविवेकसे स्मृति-पटल पर बुरे विचार अंकित होते हैं, जिससे बुद्धिका नाश हो जाता है। बुद्धि-नाशसे मनुष्यका सर्वनाश हो जाता है, और वह अपने श्रेय साधनसे च्युत हो जाता है।"

'किसीभी जीवको कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिए। सभी जीवोंमें परमात्माका ही निवास है। दूसरोंको कष्ट पहुँचाकर उनसे केवल शत्रुताही मोल लेनी होती है, जो दुःखका कारण वनती है।

यदि स्वयं दे सके तो दे, परन्तु दूसरोंसे याचना नहीं करनी चाहिए। अपने धनको सत्कर्मोंमें ही लगाना चाहिए। अतिथियोंको प्रेम-पूर्वक आश्रय देना चाहिए। परायी सम्पत्ति देखकर मनमें लालच और ईर्षा नहीं करनी चाहिए। धनका सदुपयोग मनमें शांति और सुख उत्पन्न करता है।

देवताओंको आदरपूर्वक प्रणाम करना चाहिए। समस्त धर्मोंका आदर करना चाहिए। कभी किसी की निन्दा नहीं करनी चाहिए। यदि हम शांतिपूर्वक विचार करेंगे, तो

हमें समस्त धर्मोंमें गुण ही गुण दृष्टिगोचर होंगे। उपासनाकी विधियाँ पृथक्-पृथक् हो सकती हैं, मार्ग भी भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, पर सबका लक्ष्य, सबका गन्तव्य स्थान एक ही है।

'माता-पिता और अन्य गुरुजनोंकी सेवा करनी चाहिए। स्वयं सेवा और सम्मानकी आकांक्षा न करे, पर दूसरोंका सम्मान और सेवा निष्ठाके साथ करनी चाहिए। सेवाके आनंद को केवल अनुभवसे ही प्राप्त किया जा सकता है। मनुष्य दूसरोंका आदर-सम्मान करके स्वयं आदर-सम्मानका पात्र बनता है।

'सत्य कहनेके लिए ही बोलना चाहिए। प्राण जानेका भय उपस्थित हो, तो भी सत्यका परित्याग नहीं करना चाहिए। 'सत्य' के साथ ही साथ मृदु वचन बोलना चाहिए। जो लोग सच बोलते हैं, और मृदु वाणीका प्रयोग करते हैं, वे कभी दुःखोंमें आग्रस्त नहीं होते।

'दिनमें सोना नहीं चाहिए। दिनमें सोनेसे तमोगुणकी अभिवृद्धि होती है। स्वास्थ्य भी क्षीण होता है, और कर्तव्य-पालनमें बाधा उपस्थित होती है।

'भोजन स्वादके लिए नहीं, शरीरकी रक्षाके लिये करना चाहिए। मांस मदिरा आदि का सेवन नहीं करना चाहिए। अनुचित आहार-विहारसे अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं, स्वभावमें चिड़चिड़ापन आता है, और मन अशान्त रहता है।'

आज जगत्में चारों ओर दुःख ही दिखाई पड़ रहा है। यदि हम इन दुःखोंके कारणों पर विचार करें तो निश्चय हमें उनके मूलमें वे ही बातें दिखाई पड़ेंगी, जिनका चित्रण भीष्म पितामहने अपने उपदेशमें किया है। यदि हम दुःखोंसे छूटना चाहते हैं, और अपने जीवन तथा कुटुम्ब और समाजको सुखी बनाना चाहते हैं, तो हमें यथासंभव उसी मार्ग पर चलना चाहिए, पितामहने अपने उपदेशमें जिसका उद्‌घाटन किया है।

आइए व्रतलें कि हम सब उसी मार्ग पर चलेंगे! यही वास्तविक श्रीकृष्णाराधना है।

दयामय!

'नाथ चौरासी लाख योनियोंमें भटकनेके बाद अत्यन्त दुर्लभ मानव देह उपलब्ध हुई है। यही आपके दर्शन प्राप्त करनेका सुनहरा अवसर है। कृपया अब तो मुझ दीनकी दर्दभरी दास्तान—व्यथाभरी कथा सुनो, मुझे अपनाओ। प्रभो! यदि इस समय आप मेरे ऊपर अनुकम्पा नहीं करेंगे तो आपको छोड़कर किसके द्वार पर जाऊँ? कोई मार्ग बताइये।'

'स्वामिन्! आपके कृपा-लेशको पाकर वृक्ष, दैत्य, वानर प्रभृति कई अन्य जीव भी भव-सागरसे पार हो गये; परंतु जब मुझे पार करनेका समय आया तब आप लम्बी तानकर सो गये। प्रभो! मैं तो अपना सर्वस्व आप पर न्योछावर कर चुका हूँ; अतः इस समय आपको उपेक्षाभाव प्रदर्शित नहीं करना चाहिये आपको छोड़कर अन्यत्र किसीके शरण नहीं गया हूँ।"

[भक्तवाणी]

भगवान् श्रीकृष्णके दैनिक आचार-विचारोंका एक चित्र

"भगवान् श्रीकृष्णका सारा दिन जन-कल्याणके चिंतनमें ही बीतता था। सभामें महलमें दिन-रात वे जन-कल्याणकी चिंता में ही निमग्न रहते" उनकी दिनचर्या, दूसरे शब्दोंमें 'जन-कल्याण' की ही दिनचर्या है।

भगवान् श्री कृष्णकी दिनचर्या

श्रीभगवानदत्त चतुर्वेदी

जिसप्रकार लीला-पुरुषोत्तम नंदनंदन, श्रीबालकृष्णके विविध बाल-चरित्र वैचित्र्य पूर्ण हैं, उसी प्रकार द्वारकेश भगवान् श्रीकृष्णके अनन्त शक्ति-सम्पन्न, पराक्रमादि गुणोंसे युक्त सभी कार्य भी वैचित्र्यपूर्ण हैं। भगवान् श्रीकृष्णके समस्त कार्योंमें लोक-कल्याणकी ही भावना निहित है। श्रीकृष्णभगवान् अर्जुनको सम्बोधित करते हुए गीतामें कहते हैं—"हे अर्जुन, जो पुरुष इन्द्रियोंको वशमें करके मनसे अनासक्त होकर, कर्मेन्द्रियों द्वारा कर्म योगका आचरण करता है, वह श्रेष्ठ पुरुष है। अतः तू शास्त्रों द्वारा विहित स्वधर्म रूप कर्ममें प्रवृत हो; क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना सर्वोत्तम है।"

गीतोपदेष्टा, कर्म-योगेश्वर श्रीकृष्ण स्वधर्माचरण, तथा लोक-मर्यादा रक्षणार्थ, वेद-शास्त्र-सम्मत, क्षत्रियोचित कार्य करनेमें नियमित रूपसे संलग्न रहते थे।

भगवान् श्रीकृष्णकी दिनचर्या उन्हींके अनुरूप थी। उनकी दिनचर्यामें शास्त्र-विहित धर्मका ही महत्वपूर्ण स्थान है। श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्ध, उत्तरार्द्धके अध्याय सत्तरके श्लोक चारमें श्री शुकदेवजीने भगवान्‌की दिनचर्याका चित्र अंकित किया है, जो इस प्रकार है—

'भगवान् श्रीकृष्ण प्रतिदिन ब्राह्म मुहूर्तमें ही उठ जाते और हाथ मुँह धोकर अपने मायातीत आत्म-स्वरूपका ध्यान करने लगते। उस समय उनका रोम-रोम आनन्दसे खिल उठता था।

'तत्पश्चात् वे विधिपूर्वक निर्मल और पवित्र जलमें स्नान करते। फिर शुद्ध धोती पहनकर, दुपट्टा ओढ़कर यथा-विधि नित्य कर्म संध्या-वंदन आदि करते। इसके पश्चात् हवन करते और मौन होकर गायत्रीका जप करते। क्यों न हो, वे सत्पुरुषोंके पात्र-आदर्श जो हैं।

इसके बाद सूर्योदय होनेके समय सूर्योपस्थान करते और अपने कला-स्वरूप देवता, ऋषि तथा पितरोंका तर्पण करते। फिर कुलके बड़े-बूढ़ों, और ब्राह्मणोंकी विधि पूर्वक पूजा करते। इसके बाद परम मनस्वी श्रीकृष्ण दुधार, पहले-पहल ब्यायी हुई, बछड़ों वाली सीधी-

शान्त गौओंका दान करते। उस समय उन्हें सुन्दर वस्त्र और मोतियोंकी माला पहना दी जाती। वे ब्राह्मणोंको वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित करके रेशमी-वस्त्र, मृगचर्म और तिलके साथ प्रतिदिन तेरह हजार चौरासी गौएँ इस प्रकार दान करते।

'तदनन्तर अपनी विभूति रूप गौ, ब्राह्मण, देवता, कुलके बड़े-बूढ़े गुरुजन और समस्त प्राणियोंको प्रणाम करके मांगलिक वस्तुओंका स्पर्श करते। यद्यपि भगवान्‌के शरीरका सहज सौन्दर्य ही मनुष्य-लोकका अलंकार है, फिर भी वे पीताम्बरादि दिव्य वस्त्र, कौस्तुभादि आभूषण, पुष्पोंके हार, और चन्दनादि दिव्य अंगरागसे अपनेको आभूषित करते।

इसके बाद वे घी और दर्पणमें अपना मुखारविन्द देखते, गाय, बैल, ब्राह्मण और देव-प्रतिमाओंका दर्शन करते। फिर पुरवासी और अन्तःपुरमें रहने वाले चारों वर्णोंके लोगोंकी अभिलाषाएँ पूर्ण करते और फिर अपनी अन्य (ग्रामवासी) प्रजाकी कामनापूर्ति करके उसे संतुष्ट करते और इन सबको प्रसन्न देखकर स्वयं बहुत ही आनन्दित होते।

'वे पुष्पमाला, ताम्बूल, चन्दन, और अंगराग आदि वस्तुएँ पहले ब्राह्मण, स्वजन, सम्बन्धी, मंत्री और रानियोंको बाँट देते और उनसे बची हुई स्वयं अपने काममें लाते।

'भगवान् यह सब करते होते, तब तक दारुक नामका सारथी सुग्रीव आदि घोड़ोंसे जुता हुआ अत्यन्त अद्‌भुत रथ ले आता और प्रणाम करके भगवान्‌के सामने खड़ा हो जाता।

'इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण सात्यकि और उद्धवजीके साथ अपने हाथसे सारथीका हाथ पकड़कर रथपर सवार होते—ठीक वैसे ही जैसे भुवनभास्कर भगवान् सूर्य उदयाचल पर आरूढ़ होते हैं। उस समय रनिवासकी स्त्रियाँ लज्जा एवं प्रेमसे भरी चितवनसे उन्हें निहारने लगतीं और बड़े कष्टसे उन्हें विदा करतीं। भगवान् मुस्कराकर उनके चित्तको चुराते हुए महलसे निकलते।

'तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण समस्त यदुवंशियोंके साथ सुधर्मा नामकी सभामें प्रवेश करते और वहाँ जाकर श्रेष्ठ सिंहासन पर विराज जाते। उनकी अंगकान्तिसे दिशाएँ प्रकाशित होती रहतीं। उस समय यदुवंशी-वीरोंके बीचमें, यदुवंश-शिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णकी ऐसी शोभा होती, जैसे आकाशमें तारोंसे घिरे हुए चन्द्रदेव शोभायमान होते हैं।

'सभामें विदूषक लोग विभिन्न प्रकारके हास्य विनोदसे, नटाचार्य अभिनयसे, और नर्तकियाँ कलापूर्ण नृत्योंसे अलग-अलग अपनी टोलियोंके साथ भगवान्‌की सेवा करतीं।

'उस समय मृदंग, वीणा, पखावज, बाँसुरी, झाँझ, और शंख बजने लगते और सूत, मागध, तथा वंदीजन नाचते-गाते और भगवान्‌की स्तुति करते। कोई-कोई व्याख्या-कुशल ब्राह्मण वहाँ बैठकर वेद मंत्रोंकी व्याख्या करते और कोई पूर्वकालीन पवित्र कीर्ति नरपतियोंके चरित्र कह-कहकर सुनाते।

'सुधर्मा सभामें भगवान् श्रीकृष्ण प्रतिदिन नियम-पूर्वक पीड़ितोंकी कष्ट-कथा सुनते, और सुनकर उनके निवारणार्थ उपाय करते।' इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णका सारा दिन जन-कल्याणके चिंतनमें ही बीतता था। सभामें, महलमें दिन-रात वे जन-कल्याणकी चिंतामें ही निमग्न रहते। उनकी दिनचर्या; दूसरे शब्दोंमें जन-कल्याण की ही दिनचर्या है। वह जन-जन के लिए अनुकरणीय है और वरणीय है।

शिव-भक्त श्वेतमुनिके दृढ़ विश्वासकी अमर कथा

"मृत्यु हमारा क्या कर सकती है ? मैंने मृत्युञ्जय शिवकी शरण ग्रहणकी है।"

विश्वासकी विजय

श्रीसियारामदासजी साहित्यायुर्वेदाचार्य

"मृत्यु हमारा क्या कर सकती है ?

मैंने मृत्युंजय शिवकी शरण ग्रहणकी है।"

श्वेतमुनिने पर्वतकी निर्जन कन्दराको आत्म-विश्वासके प्रकाशसे आलोकित कर दिया। चारों ओर सात्विक पवित्रताका ही राज्य था, आश्रममें निराली शान्ति थी। मुनिकी साधना ने वातावरणकी दिव्यतामें पंख लगा दिये थे।

श्वेतमुनिकी आयु समाप्तिके अन्तिम श्वास पर थी। वे अभय-चित्त रुद्राध्यायके पाठमें संलग्न थे। भगवान् सदाशिवकी आराधनामें उनका रोम-रोम रमा हुआ था।

वे सहसा चौंक पड़े। उन्होंने अपने सामने एक विकराल आकृति देखी। उसका समस्त शरीर श्याम था। उसने अपने भयंकर शरीरपर श्याम वस्त्र धारण कर रखा था।

"ओ३म् नमः शिवाय" मंत्रका उच्चारण करते हुए श्वेतमुनिने अत्यन्त करुणभावसे शिवलिङ्गकी ओर देखा।

उन्होंने उसका स्पर्श करते हुए विश्वासके साथ अपरिचित आकृतिसे प्रश्न किया—

'तुम कौन हो ? तुमने हमारे आश्रमको अपवित्र करनेका दुःसाहस किस प्रकार किया ? हमारा आश्रम भगवान् शिवके अनुग्रहसे अभय है।'

मुनिने पुनः पुनः शिवलिङ्गका स्पर्श किया।

'मैं काल हूँ। अब आप धरती पर नहीं रह सकते, आपके जीवनकी अवधि पूरी हो चुकी है, आपको अब यमलोक चलना है।'—भयङ्कर आकृतिके व्यक्तिने अपना परिचय दिया।

'अधम, तुमने शिव भक्तिको चुनौती दी है। तुम जानते नहीं, मैं भगवान् शंकरकी शरण में हूँ, जो कालके भी काल-महाकाल हैं !'

श्वेतमुनिने शिवलिङ्गको अङ्कमें भरकर निर्भयताकी साँस ली।

'शिवलिङ्ग निश्चेतन है, शक्तिशून्य है। पाषाणमें सर्वेश्वर महादेवकी कल्पना करना महान् भूल है ब्राह्मण !'

कालने श्वेतमुनिको पाशमें बाँध लिया।

'धिक्कार है तुम्हें, परम चिन्मय महेश्वरके लिङ्गकी शक्तिमत्ताकी निन्दा करनेवाले काल! भगवान् उमापति कण-कणमें व्याप्त हैं। विश्वास पूर्वक आवाहन करने पर, वे भक्त की रक्षा करते हैं।'

श्वेतमुनिने कालकी भर्त्सनाकी।

'ठहरो, श्वेतमुनिकी बात सत्य है, हमारा पाठ्यक्रम विश्वास पर ही अवलंवित है।'

उमासहित भगवान् चन्द्रशेखर प्रकट हो गये। उनकी जटामें पतित पावनी गङ्गाका मनोरम रमण था, भुजाओंमें सर्पवलय, और वक्ष:देशमें सर्पोंकी माला थी।

भगवान्के गौर शरीरपर भस्मका शृंगार ऐसा लगता था, मानो हिमालयके धवल शिखर पर श्याम घनका आन्दोलन हो।

काल भगवान्के प्रकट होते ही निष्प्राण हो गया। उसकी शक्ति निष्क्रय हो गयी।

श्वेतमुनिने भगवान्के चरणोंमें प्रणाम किया। मुनिने अपनी प्रार्थनासे गद्गद् कर दिया।

'तुम्हारी आराधना धन्य है, मुने! जगत्में विश्वासकी ही विजय होती है।'

शिवने मुनिके मस्तकपर वरद हस्त रख दिया।

नन्दीके आग्रह पर, कालको प्राणदान देकर भगवान् मृत्युञ्जय अदृश्य हो गये।

श्वेतमुनिकी वह शिवाराधना! उसकी यशगाथा युग-युगों तक धरती पर गूँजती रहेगी-गूँजती रहेगी।

प्रेमकी वाणी

पग घुंघरू बाँधि मीरा नाचीरे॥
लोग कहैं मीरा भई रे बावरी, सास कहै कुलनासी रे।
विष को प्यालो राणाजी भेज्यो, पीवत मीरा हाँसी रे॥
मैं तो अपने नारायणकी आपहि हो गई दासी रे।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर सहज मिल्या अविनासी रे॥
अब तो हरी नाम लौ लागी।
सब जगको यह माखन चोरा, नाम धर्‌यो बैरागी॥
कित छोड़ी वह मोहन मुरली, कित छोड़ी सब गोपी।
मूड़ मुंड़ाइ डोरि कटि बाँधी, माथे मोहन टोपी॥
मात जसोमति माखन कारन, बांधे जाके पाँव।
स्याम किसोर भयो नव-गौरा, चैतन्य जाको नाँव॥
पीताम्बरका भाव दिखावै, कटि कोपीन कसै॥
गौर कृष्णकी दासी 'मीरा' रसना कृष्ण बसै॥

मीराबाई

व्रजके एक तीर्थ—दाऊजीकी पावन झाँकी

"दाऊजीका दर्शन कल्याणकर माना जाता है। पुराणोंके अनुसार जो प्राणी व्रजकी यात्रा करता है, किन्तु दाऊजीका दर्शन नहीं करता, उसे व्रजकी यात्राका 'सुफल' प्राप्त नहीं होता। पुराणोंमें कई ऐसे दृष्टान्त और कथाएं प्राप्त होती हैं, जिनके अनुसार संपूर्ण व्रजमें दाऊजीका ही अखण्ड राज्य है। व्रजके अन्तर्गत दाऊजी ही मुक्ति और वैभवके प्रदाता हैं। भगवान् श्रीकृष्णकी अनुकम्पा भी दाऊजीकी ही प्रेरणासे प्राप्त होती है।"

व्रजका एक पावन तीर्थ—दाऊजी

श्रीजनार्दन मिश्र

भारतमें व्रजही वह प्रदेश है, जिसे उस विराट् पुरुषकी, जिसके भीतर कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड समाविष्ट हैं, और जो सम्पूर्ण धरातल, तथा सम्पूर्ण आकाश मण्डलको अपने एकही पगसे नापनेकी क्षमता रखता है, जन्म-स्थली होनेका महान् सौभाग्य प्राप्त है। अतः व्रजके एक-एक स्थानमें, उसकी रजके एज-एक कणमें तीर्थोंकी पवित्रता, और स्वर्गकी पावनता है। संपूर्ण व्रज मण्डलकी धरती भगवान् श्रीकृष्णके पद-रेणु, और उनकी लीलाओं तथा गोचारण से गौरवान्वित हो चुकी है। मथुरा, गोकुल, नन्दगाँव, वृन्दावन, वरसाना, और गोवर्धन आदि कितनेही ऐसे सुरम्य स्थान हैं, जो श्रीकृष्णकी पावन स्मृतियोंको मनके भीतर उत्पन्न कर देते हैं, और उत्पन्न कर देते हैं, उनकी उन लीलाओंके शाश्वत, गौरवपूर्ण चित्र, जिनके भीतरसे उनकी विराटता नित्य-नवीनकी भाँति झाँकती रहती है। हिन्दीके सुप्रसिद्ध मुसलमान कवि, रसखान व्रजकी इसी पावनता पर विमोहित हो उठे थे, और वे अपने धर्मकी समस्त कड़ियों को तोड़कर उत्कण्ठाके साथ गा उठे थे :—

"मानुष हौं तो वही रसखान,
बसौं व्रज गोकुल गाँवके ग्वारन्॥

रसखानही नहीं, बड़े-बड़े ऋषियों, महर्षियों, अर्चकों, साधकों और भक्त गृहस्थोंने भी व्रजकी पावनताका मुक्त कंठसे गान किया है, उसकी रेणुमें ललक-ललककर लोटनेकी अभिलाषा प्रकटकी है। और तो और, पुराणों और शास्त्रोंके अनुसार स्वर्गके देवता और देवियाँ भी व्रजकी भूमिमें निवास करनेके लिए उत्कंठित रहा करती हैं।

फिर तो यदि यह कहा जाय तो अत्युक्तिकी बात न होगी, कि सम्पूर्ण व्रजमण्डलही एक महान् तीर्थके सदृश है। एकबार वृन्दावनके सुप्रसिद्ध साधक, स्वर्गीय उड़ियाबाबासे उनके

एक भक्तने बड़ी उत्कण्ठासे पूछा, "महाराज, व्रजमें कौनसा ऐसा स्थान है, जो आपको अधिक सुखकर, और शान्तिप्रद लगता है?" उड़ियावावाने सहज स्वभावसे ही अपने उस भक्तको उत्तर दिया—"भाई, व्रजके स्थानोंके सम्बन्धमें भेदकी दीवाल खड़ी करनेकी अपनेमें क्षमता नहीं। व्रजमें तो जितने स्थान हैं, सभी आनन्दप्रद हैं। जहाँ लोट जाओ, वहींसे आनन्द और शान्तिके स्रोतसे निकलते जान पड़ते हैं।" सचमुच संपूर्ण व्रज इसी तरह आनन्द और शान्तिप्रद है। फिर भी किसी-किसी स्थानकी अपनी अधिक अलौकिकता है। ऐसेही स्थानोंमें एक पावन स्थान है दाऊजी।

व्रजमें जहाँ भी जाइए, दाऊजीके नामकी झंकार सुनाई पड़ती है। दाऊजी श्रीकृष्णके अग्रज थे। श्रीकृष्णकी लीलाओं और चरित्रोंमें, दाऊजी अर्थात् बलदेवजीका भी नाम जुड़ा हुआ है। कहा जाता है, कि वे शेषनागके अवतार थे। उनकी मूर्तिके ऊपर, यही कारण है, शेषनागके फण, दृष्टिगोचर होते हैं। मूसल ही बलदेवजीका अस्त्र था। उन्होंने कई युद्धोंमें अपने इस अनुपम अस्त्रके द्वारा प्रलय मचा दिया था। बड़े-बड़े शूरवीर, और योद्धा भी उनके मूसलका लोहा मानते थे। उनकी मूर्तियाँ, आज भी जहाँ कहीं मिलती हैं, 'मूसल'से अलंकृत हैं। दाऊजी बड़े शूरवीर, नीतिज्ञ, और ज्ञानी तथा पण्डित भी थे। दुर्योधन ऐसे रण-कुशल, उद्भट वीर उनके शिष्योंमें थे। कहा जाता है, कि व्रज मण्डलमें उनके नामकी तूती बोलती थी। स्वयं श्रीकृष्ण भगवान्‌भी उनका बड़ा आदर और सम्मान करते थे।

'दाऊजी'—इन्हीं दाऊजीकी स्मृतिका एक सुरम्य और पावन स्थल है। व्रजके तीर्थों और पावन स्थानोंमें 'दाऊजी'का महत्वपूर्ण स्थान है। कहा जाता है, कि यहाँ बलदेवजी प्रत्यक्ष विराजमान रहते हैं। समय-समय पर यहाँ चमत्कारिक घटनाएँ भी घटती ही रहती हैं। सहस्रों साधक, और अर्चक भी यहाँ तप, और साधनामें संलग्न दिखाई पड़ते हैं। लोगोंका कथन है, कि एक समय ऐसा था, जब व्रज मण्डलमें दाऊजीके भक्तों, और आराधकोंकी संख्या सबसे अधिक थी। आज भी व्रजके कोने-कोनेमें दाऊजीके ही मन्दिर सबसे अधिक पाए जाते हैं। व्रजकी जनतामें, प्रचलित निम्नांकित पदावलियाँ भी दाऊजीके गौरव और उनकी महानता के चित्रको सामने उपस्थित करती हैं:—

"अलबेलो छैल चिकनियाँ,
व्रजको राजा दाऊ दयाल।

क्यों न हो? त्रिलोकेश्वर भगवान् श्रीकृष्णके अग्रज को इस प्रकार श्री, और तेज-सम्पन्न होना ही चाहिए! जिसके लघु भ्रात ही 'व्रजेश्वर'के नामसे सुविख्यात हों, फिर वे बलदेवजी क्यों न व्रजके राजाके नामसे समादृत किए जायँ!

मथुरा नगरसे प्रायः १३ मील पूर्वकी ओर, 'दाऊ'जीका सुरम्य और पावन स्थान है। 'दाऊ'जीकी पवित्र स्थली होनेके कारण इसे लोग दाऊजीके ही नामसे सम्बोधित करते हैं। यों तो प्रत्येक मासमें, भारतके कोने-कोनेके तीर्थयात्री यहाँ पहुँचकर बलदेवजीके चरण-कमलोंमें अपनी भाव-सुमनांजलि अर्पित करते ही रहते हैं, पर श्रावण और भाद्रपदके महीनोंमें यहाँ विशेष जन-समुदाय एकत्र होता है। भाद्रपदमें 'बलदेव छठ'को तो सम्पूर्ण व्रज मण्डलही उमड़ पड़ता है। होलीके पश्चात् द्वितीयाके दिन 'हुरंगा'का उत्सव भारतके प्रमुख उत्सवोंमें अपना प्रमुख स्थान रखता है। प्रायः भारतके कोने-कोनेसे लोग, 'हुरंगा'का उत्सव देखनेके लिए 'दाऊ'जी पहुँचते हैं और देखकर आनन्दित होनेके साथ ही साथ कृतकृत्य भी होते हैं।

'दाऊ'जीमें दाऊजीकी विशाल, श्याम रंगकी मूर्ति है, जो लगभग सात फीट ऊँची है। मूर्तिके सम्बन्धमें अनेक प्रकारकी किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। कुछ लोगोंका कथन है, कि 'दाऊ'जी की मूर्ति स्वयं ही प्रकट हुई है। इसके विपरीत कुछ लोगोंका कहना है, कि 'दाऊ'जीकी मूर्ति क्षीरसागरसे, जिसे बलभद्र कुण्ड भी कहते हैं, निकाली गई है। जो हो, मूर्तिको देखनेसे उस 'कला'का आभास मिलता है, जो 'कुषाण-काल'की मूर्तियोंमें पाई जाती है। फिरभी निश्चित रूपमें नहीं कहा जा सकता कि, यह कुषाण-कालकी ही है। मूर्ति बड़ी दिव्य, चमत्कारिक और आकर्षक है। मूर्तिके एक हाथमें 'मूसल' और दूसरेमें आसव-पात्र है। ठोड़ी पर हीरेकी कणी, गलेमें बैजयन्ती माला, और आभूषण बरवस चित्तको अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। 'श्याम रंग'का तो कुछ अनूठाही सौन्दर्य है। श्रीमद्भागवतके अनुसार, एकबार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपना तेज बलदेवजीमें समाविष्ट कर दिया था। बस, उसीके परिणाम स्वरूप बलदेवजीका गौर वर्ण भी श्याम रंगका हो गया, जो उनका एक अनूठा सौन्दर्य बन गया।

मूर्तिकी भाँति ही दाऊजीका मन्दिरभी अधिक दर्शनीय, और आकर्षक है। मन्दिर शिखरदार है। मन्दिरका निर्माण कब हुआ—इस संबंधमें ठीक-ठीक विचार नहीं प्रकट किया जा सकता। पर शिखरकी बनावटमें नागवंशी राजाओंके कालकी शैली आविर्भूत हुई है। अतः किसी-किसीका कथन है, कि मन्दिर अति प्राचीन है, जिसमें समय-समय पर सुधार होता चला आ रहा है। निश्चय, मन्दिर प्राचीन है, और उपासकों तथा भक्तोंके आकर्षणका केन्द्र है। मन्दिरकी भाँतिही बस्ती भी प्राचीन और ऐतिहासिक है। पुराणों, और उपनिषदोंके अनुसार दाऊ जीके आस पास वन था, जो बलभद्रवनके नामसे विख्यात था। आजकल दाऊजी की जो बस्ती है, बलभद्रवनके ही अन्तर्गत है।

दाऊजीमें पण्डे और पुरोहित भी हैं, जो बड़े नम्र, मृदु भाषी, और भक्त हैं। कहा जाता है, कि प्राचीनकालमें बलभद्रवनमें ऋषि, महर्षि और तापस निवास करते थे। काल-चक्रके कारण वे ही ऋषि, महर्षि और तापस कुटुम्ब बनाकर वहीं बस गए, और पण्डों तथा तीर्थ-पुरोहितोंका काम करने लगे। उनके पास उनके भक्तों, और श्रद्धालुओंके अति प्राचीन कालके ताम्र पत्र, और हस्ताक्षर हैं। यदि पुरातत्व विभागके लोग श्रद्धासे खोज करें, तो उनके पाससे ऐसी कितनी ही सामग्रियाँ प्राप्त हो सकती हैं, जिनका ऐतिहासिक दृष्टिसे अधिक मूल्य होगा। पर दुःख तो यह है, कि हमने अपने तीर्थों और तीर्थ पुरोहितोंके प्रति पहलेसे ही अपने मनमें एक हीन भावना सी बना रक्खी है। फिर खोजका प्रश्न ही कहाँ उठता है? यही कारण है, कि देश को स्वतंत्र हुए, बीस-इक्कीस वर्ष हो गए, पर देशका वास्तविक इतिहास अभी तक सामने नहीं आ सका। यदि यही हाल रहा, तो कदाचित् आ भी न सकेगा।

दाऊजीका दर्शन अधिक कल्याणकर माना जाता है। पुराणोंके अनुसार जो प्राणी व्रजकी यात्रा करता है, किन्तु दाऊजीका दर्शन नहीं करता, उसे व्रजकी यात्राका 'सुफल' प्राप्त नहीं होता। पुराणोंमें कई ऐसे दृष्टान्त और कथाएँ प्राप्त होतीहैं, जिनके अनुसार सम्पूर्ण व्रज में दाऊजी का ही अखण्ड राज्य है। व्रजके अन्तर्गत दाऊजी ही मुक्ति और वैभवके प्रदाता हैं। भगवान् श्रीकृष्णकी अनुकम्पा भी दाऊजी की ही प्रेरणासे प्राप्त होती है। यही कारण है, कि दाऊजीमें बारहो मास भक्तों, और उपासकोंका मेला सा लगा रहता है।

"थाईलैण्ड घूमनेके पश्चात् मुझे अनुभव हुआ, कि सुदूर पूर्व स्याम में भारतसे केवल बौद्ध धर्म ही नहीं, वरन् सनातन हिन्दू धर्मभी पहुँचा था, और एक समय ऐसा था, जब सनातन धर्मके अनुयायियों की भी थाईलैण्डमें कमी नहीं थी।"

थाईलैण्डमें सनातन हिन्दू धर्म

श्रीजितेन्द्रकुमार मित्तल

थाईलैण्ड एक बौद्ध देश है, इसलिए वहां जानेसे पहले मनमें कभी इस बातकी कल्पना भी नहीं की थी कि वहां भारतीय देवी-देवताओंमें भगवान् बुद्धके अतिरिक्त और किसीकी मूर्तिके दर्शन हो सकेंगे। लेकिन थाइलैण्ड घूमनेके पश्चात् मुझे अनुभव हुआ कि सुदूर पूर्व स्याममें भारतसे केवल बौद्ध धर्म ही नहीं, वरन् सनातन हिन्दू धर्मभी पहुँचा था और एक समय ऐसा था, जब सनातन हिन्दू धर्मके अनुयायियोंकी भी थाईलैण्डमें कमी नहीं थी। ऐसा माना जाता है कि भारतसे सनातन धर्म बौद्ध धर्मसे पहले थाईलैण्ड पहुँचा। ईसा सदीके प्रारम्भिक कालमें ही थाईलैण्डमें भारतीयोंका आगमन प्रारम्भ हो गया था और इन प्रवासी भारतीयोंके साथही वैदिक धर्म तथा संस्कृति भी वहां पहुँच गयी थी। बादमें इन प्रवासी भारतीयोंमें अनेक ब्राह्मणभी थाईलैण्ड जा पहुंचे और वहां उन्होंने सनातन हिन्दू धर्मका प्रचार किया। जिस समय थाईलैण्डकी राजधानी अयोध्या थी, उस समय लवपुरी नामक रजवाड़ेमें ब्राह्मणोंकां बहुत अधिक जोर था। लेकिन पश्चात् बौद्ध धर्मको राजधर्म घोषित कर दिये जानेके पश्चात्से सनातन धर्मका प्रभाव कम होता गया और अब तो यह केवल नाममात्रके लिए ही रह गया है। अभी भी वहां प्रायः चार हजार ब्राह्मण परिवार हैं, लेकिन इनमेंसे केवल तेरह ब्राह्मणोंको ही राजासे इस आशयका प्रमाणपत्र प्राप्त है कि वे दीक्षित हैं।

इसी भारतीय प्रभावके कारण थाई लोगोंने बौद्ध धर्मके राजधर्म होने पर भी अनेक हिन्दू देवी-देवताओंको अभी तक जीवित बनाये रखा है और वे उन्हें अभी भी उचित स्थान देते हैं। यह एक आश्चर्यजनक बात है कि बुद्धके पश्चात् राम थाई जीवनपर अन्य देवताओं में सबसे अधिक व्याप्त हैं। वहांके राजवंशने अपना नाम ही राम रख लिया और थाई नरेश राम द्वितीयने तो वाल्मीकि रामायणसे प्रेरित होकर थाई भाषामें पूरी रामायण ही लिख डाली। अनेक बौद्ध मन्दिरोंमें रामायणके विभिन्न प्रसंग चित्रित देखे जा सकते हैं। थाईलैण्ड

में एक अयोध्याभी है, जो इस देशकी प्राचीन राजधानी थी। अयोध्यामें कोई राम-मन्दिरतो देखनेको नहीं मिला, लेकिन यहां एक राम उद्यान अवश्य है। इस उद्यानके भीतर बने एक प्रदर्शन कक्षमें, जहां पर स्थानीय वस्तुएँ प्रदर्शित की गयी थीं, घूमते समय अचानक मेरी दृष्टि एक पेंटिग पर अटक गयी। इस चित्रमें भगवान् विष्णु तथा लक्ष्मीजीको शेष शय्या पर क्षीरसागरमें विहार करते हुए दिखाया गया था। लक्ष्मीजी भगवान् विष्णुके चरण दबा रही थीं। उस केन्द्रकी महिलासे पूछनेपर पता चला कि यह चित्र अयोध्याके ही एक कलाकार खुनप्रसयरथकिवने कई वर्ष पहले बनाया था। अयोध्याके पास ही एक लवपुरी नामक नगर भी है, जहां एक हनुमान मन्दिर है। मन्दिरकी जो मुख्य प्रतिमा है, वह विष्णु भगवान् की खण्डित प्रतिमा लगती है। विष्णुकी चार भुजाओंमें से एक खण्डित है। एक छोटी-सी मूर्ति अवश्य कुछ-कुछ हनुमानजीकी सी लगती है। मूर्ति इतनी पुरानी है, कि उसकी आकृति स्पष्ट नहीं है। मन्दिरके नामके आधार पर इसे हनुमानजीकी मूर्ति माना जा सकता है। लवपुरीमें बन्दर भी बहुत बड़ी संख्यामें देखनेको मिलते हैं। इन बन्दरोंकी आकृति हनुमानजीसे बहुत कुछ मिलती-जुलती है।

थाईलैण्डके अत्यधिक प्राचीन नगर सुखोदयमें भी खुदाईके समय एक देवस्थान मिला है। इस देवस्थानमें 'फ्रा ईसुवन' अर्थात् भगवान् रामकी एक मूर्ति मिली है। यह तथ्य आश्चर्यजनक है कि इस प्राचीन नगरके खंडहरोंमें भगवान् बुद्धकी एक भी मूर्ति नहीं मिली। अनेक स्थानोंके बस टिकटों तक पर भगवान् रामके चित्र बने हुए हैं। बैंकाकके राष्ट्रीय संग्रहालयके बाहर भी धनुर्धारीराम की एक विशाल प्रतिमा स्थापित है।

गणेशजी भी थाईलैण्डमें कम लोकप्रिय नहीं हैं। कुछ विभागोंके राज्य चिह्नके रूप में भी गणेशजीके चित्रका प्रयोग होता है। यों यहाँ गरुड़जीही मुख्य रूपसे राज्यचिह्न पर दिखायी देते हैं। बैंकाककी एक विशाल नृत्यशालाके बाहर गणेशजीकी विशालकाय मूर्ति स्थापित है। अनेक बौद्ध मन्दिरोंमें भी गणेशजीकी मूर्ति देखनेको मिली। बैंकाकमें ही एक प्राचीन हिन्दू मन्दिर है, जिसके प्रधान पुजारी राजगुरु पद पर आसीन हैं। इस मन्दिरमें गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, पृथ्वी, चन्द्रमा, दुर्गा, आदि देवी-देवताओंकी मूर्तियाँ देखनेको मिलीं। राष्ट्रीय संग्रहालयमें भी गणेशजीकी दो मूर्तियाँ हैं। यहां लक्ष्मीजीकी भी एक मूर्ति है, जो एकदम भारतीय शैली है। सुखोदयके खंडहरोंमें भी गणेशजीकी मूर्तियाँ पायी गयी हैं। इसके संग्रहालयमें विष्णु, हरिहर, शेषशायी विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, गरुड़, नाग आदि की मूर्तियां भी रखी हुई हैं। अयोध्याके संग्रहालयके बाहर ही विशालकाय त्रिमूर्तिके दर्शन होते हैं। भीतर गणेश, विश्वकर्मा आदि देवताओंकी भी मूर्तियां हैं।

थाईलैण्डमें लोग ब्रह्मा जीका भी बहुत आदर करते हैं, क्योंकि उनका मानना है कि वे मंगल तथा कल्याणके प्रतीक हैं। इसीलिए अनेक घरोंके बाहर ब्रह्माजीकी मूर्ति स्थापित की जाती है, ताकि वे परिवारकी रक्षा करें और उसे सम्पन्न बनायें। अनेक मन्दिरोंमें भी

ब्रह्माजीके दर्शन हो जाते हैं। बैंकाकके एक प्रमुख होटल—इरावान होटलके बाहर ब्रह्माजी की मूर्ति स्थापित की गयी है।

इस देशमें कभी विष्णु भगवान्‌काभी बहुत अधिक प्रभाव था। यहाँके राष्ट्रीय संग्रहालयमें विष्णुकी अनेक कलात्मक तथा विशाल मूर्तियां देखनेको मिलती हैं। १३-१४ वीं शताव्दीकी सुखोदय शैलीकी मूर्ति तो अपनी भव्यताके कारण वरबस ही मनमें श्रद्धा पैदा कर देती है। बैंकाकका राष्ट्रीय संग्रहालय तो हिन्दू देवी-देवताओंकी मूर्तियोंसे भरा पड़ा है। ये मूर्तियां ६ ठीं शताव्दीसे लेकर १४ वीं शताव्दी तक की हैं। इनमें शिवलिंग, पंचमूर्ति, लक्ष्मी, सर्प-यज्ञोपवीतधारी शिव, श्वान वाहन वाली शीतला-दस भुजाओं वाली काली, वीणावादिनी सरस्वती, बांसुरी बजाते हुए कृष्ण, हनुमान, हाथीपर विराजमान शिव, ऐरावत पर आसीन इन्द्र, अर्द्धनारीश्वर आदि देवी-देवताओंकी मूर्तियां विशेष उल्लेखनीय हैं। ये मूर्तियां इन बात का प्रमाण हैं कि कितने पुराने समयसे ही थाईलैण्डमें प्राचीन भारतीय संस्कृति व्याप्त थी।

थाई जीवनमें नवग्रहोंका उतनाही महत्वपूर्ण स्थान है, जितना भारतीय जीवनमें। उक्त संग्रहालयमें राहु, केतु, सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनिकी भी मूर्तियाँ हैं। थाई सरकारके शिल्प तथा कला विभागके द्वार पर विश्वकर्माकी मूर्ति देखकर भला किसे न आश्चर्य न होगा। इससे यह पता चलता है कि थाईलैण्डने भारतसे मिली उस सांस्कृतिक धरोहरको, जिसे हम भारतवासी भूल चुके हैं, कितना सँभालकर रखा है। बैंकाकके लुम्बिनी पार्कके बहुत विशाल सरोवरमें नाव पर एक बड़ा होटल है। यह होटल बैंकाकका प्रमुख मनोरंजन केन्द्र माना जाता है। यह नाव किन्नरी नावके नामसे प्रसिद्ध है। नावके अगले भागमें नामको सार्थक करती हुई एक किन्नरीकी प्रतिमा बनी हुई है। बैंकाकके ही एक बुद्ध मन्दिरमें एक ऊँचे टीले पर शिवलिंग तथा नन्दीकी मूर्ति स्थापित है।

इस सबको देखनेके पश्चात् मनमें यह सहज प्रतिक्रिया हुई कि थाईलैण्डने भारतसे मिली उस सांस्कृतिक धरोहरको, जिसे हम भारतवासी भी भुला चुके हैं, कितना सँभालकर रखा है।

—*—
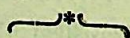
मा तारा

मा ताराका दर्शन बहुत ही सहज है। आर्त भावसे पुकारने पर वे दीख पड़ती हैं। भक्ति और विश्वाससे ही माकी प्राप्ति होती है, अन्य किसी वस्तुसे वे नहीं मिलती हैं। मैं तो योग-याग कुछ भी नहीं समझ पाता, पर आर्त भावसे पुकारने पर मा मिल जाती है।

कर्मसे ज्ञान और ज्ञानसे भक्ति और विश्वासकी स्थिति है—भक्ति और विश्वाससे निर्वाण-मुक्तिकी प्राप्ति होती है। मैं तो मूर्ख हूँ, तत्व नहीं जानता हूँ और न जानना भी चाहता हूँ। मेरी तो केवल 'तारा तारा' ही बोलते रहनेकी इच्छा है। निर्वाण क्या है बाबा मेरी तारा मा ही सब कुछ है।......ज्ञान भक्ति और विश्वास सब कुछ तारा माकी कृपासे ही मिलते हैं।

... संत वामाक्षेपा

राजमाता श्रीकृष्ण-जन्मस्थानकी दर्शक-पुस्तिकामें श्रद्धांजलि अंकित कर रही हैं ।
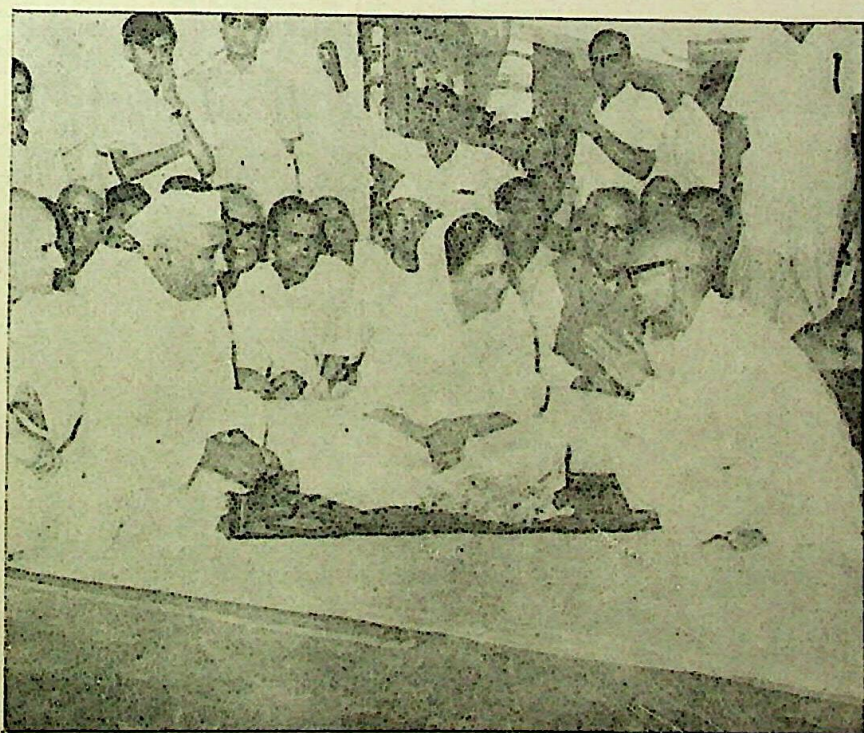
राजमाता श्रीकृष्ण-जन्मस्थानके रंगमंचपर सेठ जयदयालजी डालमियासे वार्तालाप कर रही हैं ।

श्रीकृष्ण-सन्देश के कृपालु ग्राहकोंसे

सहयोगकी प्रार्थना

महानुभाव,

आपने "श्रीकृष्ण-सन्देश" को प्रारम्भसे ही जो प्यार प्रदान किया है, उसके लिये हम आपके बड़े अभारी हैं। निस्सन्देह आपकी स्नेह-शक्ति पाकर ही "श्रीकृष्ण-सन्देश" अपने जीवनके दो वर्ष पूरे करने, तीसरे वर्षमें मासिक रूपसे प्रविष्ट होने और बड़े-बड़े सन्त-महात्माओं, विद्वानों तथा राष्ट्र-नेताओंका आशीर्वाद पानेमें समर्थ हो सका है।

"श्रीकृष्ण-सन्देश" का उद्देश्य भगवान् श्रीकृष्णके धर्मोपदेशों द्वारा व्यक्ति, समाज और राष्ट्रमें नैतिक बल, पवित्राचरण तथा स्वधर्म-निष्ठा तो बढ़ाना है ही, उनके इतिहास-प्रसिद्ध पावन जन्म-स्थानको भी उनकी महिमाके अनुरूप विकसित करके उसे ऐसा रूप देना है, जिससे कि वह देश-विदेशके जिज्ञासुओंका प्रेरणा-केन्द्र बन जाय। किन्तु इस महान् उद्देश्यकी सम्पूर्ति तभी होगी, जब समस्त श्रीकृष्णप्रेमी "श्रीकृष्ण-सन्देश" को अपना लेनेकी कृपा करेंगे।

अतः हम कृपालु ग्राहकोंसे यह प्रार्थना करते हैं कि आप अपने इष्ट मित्रों और बन्धु-बान्धवोंको "श्रीकृष्ण-सन्देश" के ग्राहक बनानेका अनुग्रह करें। यदि प्रत्येक कृपालु ग्राहक दस-दस नये ग्राहक बना देनेका कष्ट उठावें तो "श्रीकृष्ण-सन्देश" की शक्ति दस गुनी बढ़ जायेगी।

आशा ही नहीं, विश्वास है कि आप सभी कृपालु ग्राहक हमारी प्रार्थना पर अवश्य ध्यान देनेकी कृपा करेंगे।

प्रार्थी—

प्रबन्ध-सम्पादक

"श्रीकृष्ण-सन्देश"

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ, मथुरा।

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघके लिए देवधरशर्मा द्वारा बम्बई भूषण प्रेस, मथुरामें मुद्रित तथा प्रकाशित : आवरण-मुद्रक—बृजवासी फाइन आर्ट ओफसैट वर्क्स, मथुरा।